प्राणायाम-तत्त्व

लेखक—

नैष्ठिक ब्रह्मचारी महात्मा-
श्री आनन्द स्वरूप जी 'ॐ'
गड्डी आश्रम, ॐ मंदिर, जोधपुर

प्रकाशक—

आदर्श ग्रंथमाला,
दारागंज, प्रयाग

द्वितीय संस्करण]   १९३३   मूल्य ।।।)

प्रकाशक—

जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी-भूषण, विशारद,

आदर्श ग्रंथमाला,

दारागंज, प्रयाग

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मुद्रक—

विजयबहादुरसिंह, बी० ए०

महाशक्ति-प्रेस,

बुलानाला, बनारस सिटी

प्राणायाम-तत्त्व

—महात्मा आनंद स्वरूप जी

'ॐ'

विषय-सूची

विषय	पृष्ठाङ्क
समर्पण	९
निवेदन	११
भूमिका	१३
१—प्राणायाम के साधन	१७
ब्रह्मचर्य	१८
मठ	२०
आसन	२१
२—भोजन	२३
मांस	२६
मादक वस्तुएँ	२७
३—प्राणायाम	२९
(१) प्राण का महत्व	२९
(२) प्राण की स्थिति का महत्व	३०
(३) प्राण हमको क्यों त्याग देता है ?	३१
(४) प्राणका दीर्घत्व	३२
(५) प्राण वीरभद्र है	३३
(६) मन एवं प्राण	३४
(७) मन का निरोध	३८
[१] योगश्चित्तवृत्ति निरोध	३९
[२] अभ्यास का स्वरूप	४०
[३] वैराग्य का स्वरूप	४१
[४] मन को रोकने के साधन	४१

विषय पृष्ठाङ्क

[अ] भगवान् शंकराचार्य का अनु-
भूत प्रयोग ४१
[आ] अष्टावक्र मुनि का जनक को
बताया हुआ प्रयोग ४२
[इ] कुछ नये अनुभूत प्रयोग ४३
(८) प्राण और रक्त ४६
(९) पुरुष हरएक परिस्थिति में प्राणायाम कर
सकता है ४८
(१०) समष्ठी प्राणायामों का फल ५१
[क] प्राणायाम का अर्थ ५१
[ख] प्राणायाम के व्यायामों की विशेषताऐं ५८
[ग] प्राणायाम से समाधि एवं व्यायाम
का भेद ५३
[घ] कुछ स्थूलिक विशेषताएँ ५४
४—प्राणायाम के भेद ५५
(१) पूरक ५५
(२) कुम्भक ५७
(३) रेचक ५७
(४) विशेष विवेचन ५८
(५) बहिर कुम्भक ६१
(६) अन्तर कुम्भक ६२
(७) सूर्यभेदी प्राणायाम ६३
(८) उज्जायी ६३
(९) सीत्कारी ६४
(१०) शीतली ६५

विषय पृष्ठाङ्क

भस्त्रिका (भस्त्रिका का अर्थ) ६६

[अ] भस्त्रिका की विधि ६६

[आ] साधक और भस्त्रिका ६७

[इ] भस्त्रिका और कुम्भक ६९

[ई] भस्त्रिका की पूर्णता ७०

[उ] भस्त्रिका का फल ७१

भ्रामरी.......... ७२

मूर्छा ७३

प्लाविनी ७४

समवृत्ति प्राणायाम ७५

प्राकृतिक प्राणायाम ७५

केवल कुम्भक ७७

प्राणों को दीर्घ बनाने का प्राणायाम ७९

आनन्दात्मक ध्वनि ८१

ध्वन्यात्मक प्राणायाम ८२

नाड़ी शोधक प्राणायाम ८५

नादानुसंधान के लिए ८६

सर्व व्याधि नाशक प्राणायाम ८७

[क] कवि बनानेवाला प्राणायाम ८८

[ख] क्षयी निवारक प्राणायाम ८९

[ग] मानसिक भावना श्वास खाँसी आदि पर ९२

[घ] अपस्मार नाशक प्राणायाम ९१

[ङ] रक्त विकार या कुष्ठ ९२

[च] मुख जिह्वा आदि रोगों पर ९२

वीर्य संशोधक प्राणायाम ९४

विषय | पृष्ठाङ्क

उदर संशोधक प्राणायाम	१०३
पेट को घटाने और छाती को बढ़ाने वाला प्राणायाम	१०४
हृदय बाहु कण्ठ विकासक प्राणायाम	१०६
शरीर को सुडौल बनाने वाला प्राणायाम	१०७
एक देशी प्राणायाम	१०९
कुछ ध्यान में रखने की बातें और सूचना	१११
प्राणायाम बढ़ाने के साधन और सूचना	११२
प्राणायाम की सफलता के चिह्न	११३
रोग निवारक प्राणायामों की सफलता के चिह्न	११५
अपानायाम, उसके १३ प्रयोग	११७
उपसंहार	१२६

समर्पण

ॐ ऐसा कोई भी जीवन विश्व में नहीं है जो कल्याण और शक्ति को नहीं चाहता हो अर्थात् मात्र जीवन ही शक्ति और कल्याण का उपासक हो। अतः इस "प्राणायाम-तत्त्व" नामक पुस्तिका में दोनों ही तत्त्वों को प्राप्त करने के साधन बताये हैं। जो जिज्ञासु जन इन दोनों तत्त्वों को अर्थात् कल्याण और शक्ति को चाहते हों, उन्हीं साधकों के कर कमलों

में

यह विश्व का जीवन रूप

"प्राणायाम-तत्त्व"

शिवार्पण।

करता समर्पण ॐ उनको, विश्व का जीवन यहै।
शिव-और-शक्ति 'स्वरूप' बन, 'आनन्द' रस पीवन चहै॥

लेखक—

विश्वात्मा ॐ

अनमोल पुस्तकें

ब्रह्मचर्य-जीवन--ब्रह्मचर्य पर उत्कृष्ट पुस्तक ॥)

भोजन ही अमृत है--भोजन द्वारा ही रोगों को दूर करने की सहज विधि ।॥)

स्वास्थ्य के प्राकृतिक साधन--प्रकृतिक साधनों से स्वास्थ्य रक्षा की सरल विधि १)

संघर्ष--प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार तुर्गनेव का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास २)

बन्दी--यूजेन चिरकोव लिखित बड़ा ही मर्मस्पर्शी उपन्यास ।॥)

दुलहिन के पत्र--स्त्री समाज में हलचल मचा देनेवाली एक हृदय स्पर्शी कहानी ॥)

चन्द्रिका--ओजपूर्ण भाषा में लिखा अपूर्व नाटक ।=)

चित्रादर्श--संसार के उत्कृष्ट कहानी-लेखकों की कहानियों का संग्रह १।)

आविष्कार की कहानियाँ--आविष्कारों की मनोरंजक कथाएँ ।॥)

घरेलू विज्ञान--घरेलू जानकारी की अपूर्व पुस्तक १॥)

पाक विज्ञान--पाक-शास्त्र की अद्वितीय पुस्तक २॥)

पता--

आदर्श-ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग

निवेदन

ॐ न तो इस पुस्तक में भाषा की पटुता है, न पाण्डित्य ही है। न यह कोई उपन्यास है, न गल्प। यह केवल योग के अनुभूत प्राणायाम-रत्नों का संग्रह है। जिनको सेवन करने से बाल, वृद्ध स्त्री-पुरुष, निर्बल, बलवान, मूर्ख, पण्डित, योगी, अयोगी, राजा और रंक किसी भी श्रेणी का प्राणी आरोग्यमय दिव्य जीवन प्राप्त करके मोक्ष के अलभ्य सुखों को प्राप्त कर सकता है। ॐ इन प्रयोगों को इतना व्यावहारिक बनाने की चेष्टा की है जिससे ये प्रयोग हिमालय के योगी और साधारण ग्राम्य-जीवन वाले स्त्री-पुरुषों को समान लाभ पहुँचाते हैं। यह पाठ्य पुस्तक नहीं, अपितु क्रियात्मक है। इतना होने पर भी इस पुस्तिका के प्रयोगों से विद्यार्थी जीवन को अधिक से अधिक लाभ होगा; उनका जीवन दिन-प्रतिदिन सूर्यमुखी के समान विकसित होता जायगा। प्राणायामों से मानसिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है, स्मृतिका विकास होता है, विचारों में स्फूर्ति आती है, मानसिक अर्थात् मस्तक की थकान को दूर करने का अपूर्व बल प्राप्त होता है। इसकी सत्यता मानसिक और पुस्तक से काम करने वाले पुरुष काम करने के पश्चात् २—४ प्राणायाम कर स्वयं देख सकते हैं। अलम् विश्वात्मा ॐ।

आनन्द स्वरूप 'ॐ'।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकें

काम-कुंज—कामशास्त्र-सम्बन्धी जानकारी के लिए एवं दाम्पत्य-जीवन को सुखमय बनाने के लिए इसे एक बार अवश्य पढ़िये। मूल्य ४)

आरोग्य-मन्दिर—नया संस्करण। स्वास्थ्य-सम्बन्धी चुने हुए विद्वानों के लेखों का अपूर्व संग्रह। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २)

आहार-विज्ञान—आहार-सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी करानेवाला विद्वानों द्वारा प्रसंशित एक मात्र ग्रन्थ-रत्न। मूल्य २)

सुखी गृहिणी—स्त्रियों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी जानकारी के लिए यह एक ही पुस्तक पर्याप्त है। मूल्य केवल १)

सफलता का रहस्य—जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक सञ्जीवनी है। इसे अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल १)

जीवन-रक्षा—बालकों का जीवन सुधारने एवं उन्हें सदाचारी बनाने के लिए इस पुस्तक का पढ़ना आवश्यक है। मूल्य ॥)

दद्रु-चिकित्सा—दाद क्यों होता है कितने प्रकार का होता है और किस प्रकार दूर किया जा सकता है; आदि बातें इससे मालूम होंगी। मूल्य ॥)

सिर का दर्द—सिर में कितने प्रकार का दर्द होता है; कैसे दूर हो सकता है। आदि सम्पूर्ण बातें इससे मालूम कीजिए मूल्य ॥)

दीर्घ जीवन—दीर्घ जीवन के अभिलाषी प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसका एक-एक शब्द बहुमूल्य है। मूल्य केवल ।)

सौंफ-चिकित्सा—संसार भर के सम्पूर्ण रोग इस अकेली सौंफ-द्वारा, इस पुस्तक की सहायता से भगाए जा सकते हैं। मूल्य ।)

अमृतपान—उषः जलपान-द्वारा ही रोग मुक्ति के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। मूल्य केवल ।)

सुखी जीवन—जीवन को आनन्दमय एवं सदाचार पूर्ण बनाने के लिए तथा गार्हस्थ्य जीवन की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए, इसे पढ़िये। मूल्य १)

पता—आदर्श ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग

भूमिका

न योगात् परमं बलम्

ॐ योग उस विद्या का नाम है जिससे प्राण अमृत में गोता लगा कर मृत्यु रहित हो जाता है। महर्षि गेरण्ड ने कहा है कि यह मनुष्य का शरीर मिट्टी के कच्चे घड़े के समान है जो मृत्य है अर्थात कच्चा रहने से निकम्मा है; परन्तु जिस प्रकार घट अग्नि में पक कर दृढ़ बन जाता है, यहाँ तक कि वह जल में भी गलने से अमृत्य हो जाता है; वैसे ही यह शरीर जो मृत्य है, योगाग्नि में पक कर मृत्यु रहित, अमृत्य हो जाता है। परन्तु शरीर का अमर होना तभी संभव है जब प्राणों को अमृत में नहला दिया जावे। क्योंकि प्राण ही शरीर के समस्त अवयवों का जीवनदाता एवं स्तम्भक है। अन्य सब वस्तुओं के बिना शरीर कितने ही दिन तक रह सकता है; परन्तु प्राण के बिना एक क्षण भी रहना असम्भव है। अतः मनुष्य जीवन के लिए प्राण ही ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है और प्राण के लिए योग ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है।

समय के चक्र की बलिहारी है! जो भारत, योगियों का जन्म-स्थान है; वहाँ का साधारण जनसमुदाय योग से इतना भयभीत मालूम होता है कि लोग इसकी ओर कुभाव, संशय एवं भय की

दृष्टि से देखने लगे हैं। लोग इसे एक असाधारण विद्या मानते हैं और यहाँ तक कह बैठे हैं कि 'देखा देखी साधै योग, छीजे काया बाढ़े रोग'। हा! हत भाग्य भारत! क्या स्वप्न में भी कोई यह ख्याल करता था कि हम अपनी ही विभूतियों से दूसरों को वैभव सम्पन्न बना कर स्वयं ही कंगाल बन बैठेंगे और यहाँ तक नीचे गिर जावेंगे कि उन विभूतियों का आनन्द लूटना तो दूर रहा; उनका स्मरण तक करना पाप समझ बैठेंगे। केवल यही नहीं; असंख्य धूर्त, गेरुए वस्त्र धारण कर, साधु व योगी के नाम को कलंकित कर, भारत को लज्जित करने वाले केवल अपने पेट के पालन के लिए, अनेक ढोंग रचते हैं और भोले मनुष्य को ठगते फिरते हैं। यही कारण है कि अधिकांश भाइयों का विश्वास योगविद्या पर से पूर्णरुपेण हट गया है। पढ़े-लिखे तथा सभ्य कहलाने का दावा करने वाले तो योग की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखना चाहते।

किन्तु, योग को इस प्रकार घृणा की वस्तु समझना बड़ी भारी भूल है, बड़ा भारी भ्रम है। असंख्य वर्षों से भारतवर्ष में मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया गया है और अनेकों ऐसे पुरुष-रत्न हुए हैं जिन्होंने प्राणायाम के संबन्ध में आश्चर्यजनक आविष्कार किये जो मनुष्य मात्र के लिए लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

योग-शास्त्र में श्वास-विज्ञान मुख्य है। श्वास-विज्ञान अर्थात्

प्राणायाम ही हमारा जीवन है। यदि हम प्राणायाम का सहारा लें तो हमारा शरीर दृढ़, सुन्दर एवं प्रभावशाली बनकर आश्चर्य-जनक आकर्षण-शक्ति प्राप्त कर सकता है।

हर्ष की बात है कि अब भारतवर्ष में लोग कुछ तो पाश्चात्य प्रभाव के कारण एवं कुछ इस विषय पर हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में सुन्दर पत्र व पुस्तकें प्रकाशित होने के कारण, योग की ओर विशेष ध्यान देने लगे हैं और इस बात का पूर्ण उद्योग किया जा रहा है जिससे लोग योग के भय का जो भ्रम-जाल फैला हुआ है, उसे दूर हटा दें।

मुझे ॐ की सेवा में जाते हुए अनुमानतः ५ वर्ष हो गये हैं और ॐ सदा व्यायाम तथा प्राणायाम की चर्चा ही करते हैं। अब भी मुझ-जैसे प्राणायाम-विज्ञान, तथा योगशास्त्र से अनभिज्ञ, अनुभवहीन एवं अज्ञानी नवयुवक को इस 'प्राणायाम तत्त्व' की भूमिका लिखने की आज्ञा दी है, यह ॐ की विशेष कृपा ही का प्रमाण है और शायद इसमें भी कुछ न कुछ उपकारमय रहस्य अवश्य है जो ॐ ही जानते हैं। अस्तु।

इस पुस्तक के लिखने का मुख्य उद्देश्य लोगों का प्राणा-याम शास्त्र पर विश्वास जमाना है। अतः ॐ ने व्यायाम के सरल नियम बता कर उसके साथ ही साथ श्वास-प्रश्वाश की क्रियाएँ बतलाई हैं जो प्रत्येक को थोड़े ही से अभ्यास और उद्योग से समझ में आसकती हैं। कई श्वास-क्रियाएँ और व्यायाम ऐसे हैं

जो यदि कोई उनको विश्वासपूर्वक करे तो रोग उसे स्वप्न में भी नहीं छू सकता। कई ऐसी हैं जिनको करने से दुर्भाग्य से जो रोगग्रसित हो गया है; वह भी विना डाक्टर व वैद्य के चंगुल में फँसे ही रोग से सर्वथैव मुक्त हो सकता है; और कुछ ऐसी क्रियाओं का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है, जो आध्यात्मिक ज्ञान को बढ़ाने वाली तथा ब्रह्मानन्द देने वाली हैं, जिनको योगी शनैः-शनैः नियमपूर्वक रह कर साध सकता है।

यह पुस्तक सर्वसाधारण के बोधगम्य हो, इसी उद्देश्य से ॐ ने इसे बहुत सरल भाषा में लिखने का उद्योग किया है। अतः कोई भी सज्जन इसे साहित्य की कसौटी पर कसने का व्यर्थ कष्ट न उठावें।

मुझे पूरा विश्वास है कि लोग इस पुस्तक को अपनावेंगे और इसमें बतलाई हुई क्रियाओं को समझ उनसे लाभ उठाने का उद्योग करेंगे। ॐ की इच्छा यही है कि लोग योग से डरें नहीं; उसके साथ योग दें और यदि इस सम्बन्ध में कोई विशेष शंका हो तो किसी अनुभवी योग-शास्त्र के ज्ञाता से मिलें अथवा ॐ से आकर मिलें और शंका-समाधान करने का उद्योग करें।

वसन्त-पञ्चमी, १९८६
जोधपुर

व्यास सूर्यराज रघुनाथ शर्मा
बी० ए०, विशारद

प्राणायाम तत्त्व

१—प्राणायाम के साधन

ॐ सृष्टि मात्र के व्यायामों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी में डंड, बैठक, कुश्ती, मुद्गर, मोगरी, करेला, मलखंभ, लकड़ी एवं पाश्चात्य रीत्यनुसार जमनास्टीक, डम्बैल आदि कहे जा सकते हैं। ये सभी व्यायाम स्थूल शरीर-पोषक, रूप सौन्दर्य-वर्धक एवं अप्राकृतिक कहे जा सकते हैं। दूसरी श्रेणी में आसनों के व्यायाम कहे जा सकते हैं। यह व्यायाम पूर्वोक्त व्यायाम से प्राकृतिक और सूक्ष्म स्नायु, मज्जा, तन्तुओं का पोषक तथा शोधक, रूप-सौन्दर्य-वर्धक, वीर्य एवं रक्त को स्वच्छ करके जीवन देता है। तीसरी श्रेणी का व्यायाम प्राणायाम है। यह पूर्वोक्त दोनों श्रेणियों से बिलकुल प्राकृतिक, ऐश्वर्य, जीवन-शक्ति, रूप, प्राणों का पोषक, शोधक प्राणायाम का व्यायाम है जिसका उल्लेख इस निबन्ध में करना है।

इसके प्रथम कुछ प्राणायाम के साधनों का कथन करना आवश्यक है; जिनमें सब से प्रथम ब्रह्मचर्य को ही कहते हैं। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही सर्वसिद्धियों का दाता है। कहा है—

'न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।'

ब्रह्मचर्य

ॐ आप जानते ही हैं कि शुक्राचार्य असुरों के कुल-गुरु थे; जिनके पास मृत-संजीवनी-विद्या सिद्ध थी। जिससे वे मृत असुरों को जीवित बना देते थे। इसका भाव यह है कि "असु" प्राणों में 'र' प्रगति, रंजन, आनन्द, प्रकाश, ज्योति, जीवन देनेवाला शुक्र आचार्य है। इससे ठीक सिद्ध होगया कि शुक्र-रूप शुक्राचार्य ही प्राण-रूप असुरों को प्रगति, चाल, रंजन, आनन्द, प्रकाश, ज्योति, जीवन देनेवाला प्राणों का कुल गुरु है। शुक्र ही मृतक प्राणों को जीवित किया करता है। शुक्रहीन नवयुवकों के प्राण थोड़े ही गमन से व्याकुलता के गर्त में पड़ जाते हैं। शुक्रहीन पुरुष के प्राणों को कभी आनन्द नहीं मिलता है। शुक्रहीन पुरुष के प्राण दुर्बलता की कालिमा में डूबे रहते हैं। ऐसे व्यक्ति को चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार नजर आता है। शुक्रहीन प्राण जीवित रहते हुए भी मृतप्राय ही होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वीर्य-दोषी युवकों को देखने से मिल जाता है। अस्तु, ब्रह्मचर्य ही प्राणों का जीवन है। ब्रह्मचर्य-हीन पुरुष प्राणायाम में कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। तभी तो शिव-

संहिता में कहा है, कि 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दु धारणं' बिन्दु का पतन ही मृत्यु और बिन्दु का धारण ही जीवन है। यदि ईश्वर का वाचक प्रणव ॐ बिन्दु को अपने माथे पर धारण न करे तो उसका भी नामोनिशान मिट जाता है, अर्थात् उसको कोई ॐ प्रणव परमात्मा का नाम नहीं कह सकता। तभी तो शिव-संहिता में शिव कहते हैं कि 'अहं विन्दु' मैं ही बिन्दु हूँ। 'शिवे विन्दु' शिव ही विन्दु है। अतः प्राणायाम के उपासक पुरुषों को इस शिवस्वरूप बिन्दु को अवश्यमेव धारण करना चाहिये। इस शुक्र-विन्दु का ही तीसरा नाम रेत है। योग-शास्त्रों में रेत को भी ऊर्ध्व धारण करने से अमृत की प्राप्ति कही है। जैसे—'ऊर्ध्व रेताभवेत यावद्, तावद कालभयं कुतः।' जब तक पुरुष ऊर्ध्वरेता रहता है, तब तक काल का भय कहीं भी नहीं होता। रेत नाम तीक्ष्णता का होता है। वीर्यवान युवक की बुद्धि अति तीक्ष्ण हुआ करती है। वह हर एक कार्य में तीक्ष्णता दिखाया करता है। शुक्र का चौथा नाम वीर्य है। यह नाम वीरत्व का द्योतक, सूचक है। वीर-पुरुषों को वीर्यवान विशेषणों से विभूपित किया जाता है। वीर्यवान और वीरत्व का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है जितना सूर्य और प्रकाश का। जैसे प्रकाशहीन सूर्य होता है, वैसे वीर्यहीन वीरत्व होता है। वीर्य में वीरत्व सिद्ध करने के लिए प्रातःस्मरणीय पितामह भीष्म, हनूमान, परशुराम, लक्ष्मण आदि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। वीर्य से प्राणायाम स्वतः सिद्ध होता है। प्रातःस्मरणीय पितामह

भीष्म का छः मास तक वाण-शय्या पर समाधिस्थ रहना, हनूमान का प्राणायाम से समुद्र-पार जाना आदि अनेक उदाहरण मिलते हैं। शुक्र का पाँचवाँ नाम भर्ग है "वीर्यं वैभर्गः" (स० ब्रा०) जो गायत्री-मन्त्र के सविता देव के प्रकाशक हैं; जैसे भर्ग विना गायत्री-मन्त्र का सविता देव अन्धा हो जाता है, वैसे ही प्राण-रूप सविता भी शुक्र-रूप भर्ग विना अन्धा-निर्जीव हो जाता है। जैसे गायत्री-मन्त्र के सविता सूर्य, परमात्मा देव को अपना अस्तित्व रखने के लिए भर्ग की आवश्यकता है, वैसे ही प्राण-रूप सविता को भी अपना अस्तित्व रखने के अर्थ भर्ग की आवश्यकता है। अतः प्राण के उपासकों को वीर्य-रूप शुक्राचार्य, विन्दु, भर्ग, रेत को अवश्य धारण करना चाहिये। इससे अधिक मृत-संजीवनी-विद्या, तप संसार में और नहीं है। इसी ब्रह्मचर्य रूप तप को करके देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया था; अर्थात् कालातीत समाधि में पहुँच गये थे, जो प्राणायाम का मुख्य ध्येय है।

मठ

ॐ प्राणायाम के लिए जो गुहा, मठ, कुटिया, कमरा वनाया जावे, वह सुदेश, सुराज्य में वनाना चाहिये। इस मठ के अन्दर के भाग में सुन्दर रंग कराकर उसके अन्दर नाना तरह के प्राणायाम सम्वन्धी आसन, मुद्रा, वन्ध करते हुए योगी एवं ऋषियों के चित्र चित्रित कराने चाहिये; जिससे साधक को प्रोत्साहन मिलता रहे। इस गुहादि में दुर्गन्धित वस्तु कभी भूलकर भी

नहीं रखनी चाहिये। अपितु दुर्गन्धित वायु के शोधनार्थ सुगन्धित धूपादि पदार्थों का उपचार होना आवश्यक है। इस आश्रम के आस-पास का जंगल भी प्राकृतिक, रमणीय, हिंसक जन्तुओं से रहित होना चाहिये। जिसके आस-पास प्रातः सायं में मृग, मयूर, कोकिल, सारसादि पशु-पत्ती मधुर-मधुर शब्दों, क्रियाओं से मनोरंजन किया करें। जो स्वभाव से ही आकर्षक हो; जिसके अति समीप की वाटिका में तुलसी, विल्व, मौलिश्री, चम्पा, मोगरा, रायवेल, चमेली आदि पुष्पलताएँ खिलखिला कर हँसती रहती हों; जिसके सामने दूर्वा का मनोहर फर्श बिछा हो—ऐसे मठ में साधक का प्राणायाम निर्विघ्न होता है।

आसन

आसन का अर्थ बैठने की विशेषता है। अर्थात् अपनी बैठक, स्थिति में कोई विशेषता लाना ही आसन कहलाता है। जिस बैठक, स्थिति में बैठने से कोई विशेष सुख एवं आनन्दमयी स्थिरता की प्राप्ति होती है, उसको ही आसन कहते हैं। भगवान् पातञ्जलि के आसन शब्द का अर्थ इस ही अर्थ में उपरित हुआ है। अर्थात् जिस स्थिति में स्थिरता, सुख एवं आनन्द प्राप्त होता है; आलस्य आदि सर्व विघ्न अपने आप हट जाते हैं, उसी स्थिति को आसन कहते हैं। आसन का मुख्य अर्थ दुःखों का नाश एवं सुख और आनंद की प्राप्ति होता है। विश्व में जितनी भी जड़, चेतन मात्र जाति-उपजाति हैं, उतने ही आसन भी हैं। इन आसनों में से

एक प्राणायामोपयोगी सिद्धासन यहाँ बतलाया जाता है, जिसकी महिमा योगशास्त्र, गीता, उपनिषदों में मुक्तकण्ठ से कही गई है। योगशास्त्र में तो यहाँ तक कह दिया है कि इस एक ही आसन के बारह वर्ष के नित्य अभ्यास से अन्य कोई भी साधन करते हुए साधक निर्विघ्न योग की सर्वसिद्धि–समाधि को प्राप्त होता है। यह आसन वीर्य-पुष्टिकर, बीस प्रकार के प्रमेह नाशक, शरीर-मात्र के दोषों का शोधक, क्षुधा एवं आरोग्यता का वर्धक, प्राण को ऊर्ध्वगामी बनाने में अद्वितीय है। अखण्ड ब्रह्मचारियों के लिए तो यह अमोघ अमृत ही है।

सिद्धासन—

सिद्धासन की विधि यह है कि आप अपने उदर, छाती, मस्तक को उन्नत बनाकर शरीर को समसूत्र में करके बैठ अपने वाम पाद की एड़ी को गुदा से दो अंगुल ऊपर और लिङ्ग, उपस्थ से दो अंगुल नीचे प्रमेह नाड़ी के ऊपर अच्छी तरह से जमा लेवे। वैसे ही दायें पाँव की एड़ी को लिङ्ग, उपस्थ के ठीक मूल नाभी के सीध में जमा लेवे और बायें पग की अंगुष्ठ, तर्जनी को दायें पग की जंघा और पिंडली के बीच में जमाकर उदर, नाभी को जोर से आकर्षणपूर्वक मेरुदण्ड, रीढ की हड्डी में लगाकर ठोड़ी चिबुक, को कण्ठ-कूप में लगाने से सिद्धासन बन जाता है। यह सिद्धासन यथार्थ में यथा नामा तथा गुणा है।

२—भोजन

ॐ प्राणायाम के उपासक पुरुषों को ऐसे भोजन कदापि नहीं करने चाहिये, जिनमें 'नाइट्रोजन' आदि के परिमाणु अधिक मात्रा में हों। अपितु इसके विपरीत वेही भोजन खाने चाहिये, जिन में 'आक्सीजन' के परिमाणु अधिक मात्रा में हों। प्राणायाम के उपासक के लिए सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ भोजन फलाहार ही होता है। फलों में भी अति खट्टे एवं वायु-वर्धक फल कभी नहीं खाने चाहिये; जैसे—टमाटम, करोंदे, अमरूदादि। प्राणायाम में शाकाहार भी सर्वश्रेष्ठ ही होता है। शाकाहार में भी कटु, कशाय आदि शाक त्याज्य हैं। तीसरी श्रेणी में दुग्धाहार भी अत्युत्तम भोजन होता है। दुग्धाहार में गाय का ही दुग्ध अतिश्रेष्ठ होता है। दुग्धाहारी पुरुषों को दुग्ध पर पूर्णतया ध्यान देना चाहिये कि जिस गाय का दुग्ध मैं पीता हूँ, वह गाय क्या पदार्थ खाती है। क्योंकि आजकल प्रायः शहरों के दुग्ध बेचनेवाले अपनी गायों को घोड़ों की लीद धोकर बहुधा खिलाया करते हैं। विष्टा एवं लीद खानेवाली गाय दुग्ध अधिक मात्रा में देने लगती है। इसी कारण गोपति इन्हें नहीं रोकते हैं। ॐ के अनुभव से तो ग्वार खानेवाली गाय का दुग्ध भी प्राणायाम में हानिकारक ही होता है; क्योंकि इस दुग्ध में वायु मात्रा से अधिक होती है। ॐ का अनुभव है कि आहार के अनुरूप ही दुग्ध बनता है।

एक समय ॐ बीकानेर में दुग्धाहार करता था। ॐ के समीप की बगीची में एक भारती साधु दुग्ध बेचता था। सेठ रामबक्स ने ॐ के लिए दुग्ध इसी साधु के यहाँ से लेना आरंभ किया। ॐ ने जब दुग्ध हाथ में लिया, तब उसमें से साक्षात् ग्वार की गंध आने लगी। ॐ ने कहा कि क्या भारती जी! आपके इस दुग्ध में ग्वार तो नहीं मिल गया है? भारती जी बोले कि नहीं महाराज, इसमें ग्वार की गन्ध आने का कारण तो गाय का ग्वार खाना ही है। ग्वार का दुग्ध शरीर में वायु उत्पन्न करके शरीर को फुलाता है। शरीर का फूलना प्राणायाम में हानिकारक है। दुग्धाहारी गाय को चराने के लिए हरे उरद की बेल अति उत्तम है। हरे उरद की बेल खानेवाली गाय का दुग्ध प्राणायाम में अमृत का कार्य करता है। गाँधी आदि सुगन्धित हरे घास खानेवाला गाय के दुग्ध में बड़े विचित्र गुण और सुगन्धि होती है। इस गाय के दुग्ध पान से मनुष्य दिव्य सुगन्धि और गुणों से युक्त हो जाता है। ऐसे दुग्धपान से प्राण भी स्वच्छ एवं दिव्य हो जाते हैं। इसके रोकने में भी बहुत कम परिश्रम होता है। यही कारण था कि हमारे पूर्वज ऋषि गाय रखते हुए वन-जीवन ही उत्तम समझते थे। गाय को बिनौला (कपास), खली आदि खिलाने से भी उत्तम दुग्ध हुआ करता है। बिनौले के दुग्ध में घृत की मात्रा अधिक होती है। साँठी के चावल एवं शक्कर खिलाने से भी गाय का दुग्ध मीठा एवं अधिक मात्रा में बढ़

जाता है। यह दुग्ध भी प्राणायाम में उत्तम होता है। दुग्धाहार के न मिलने पर चावल, खिचड़ी, घृत, दाल, रोटी भी यथाक्रम से खा सकते हैं।

भोजन के कुछ नियम—

(१) भोजन में खटाई, मिर्च, मसाले आदि बिलकुल नहीं खाने चाहिये।

(२) भोजन बिलकुल सादा एवं हलका होना चाहिये।

(३) भोजन रसवाला, स्निग्ध, स्थायी बल से युक्त सात्त्विक होना चाहिये।

(४) भोजन नियम से अधिक कभी नहीं करना चाहिये।

(५) भोजन का नियम यह है कि जिस समय खाना उसी समय नित्य खा लेना चाहिये।

(६) जितना खाना उतना ही खाना, रोटी कम और मिष्टान्नादि अधिक नहीं खाना चाहिये।

(७) भोजन खूब दाँतों से कुचलकर खाना चाहिये, जिससे मुख में ही उसका रस बनकर नाडियों में जाने लगे। अन्यथा दाँतों का काम आँतों से लेना पड़ता है। बहुत से मनुष्य भोजन के नियम तोड़ने से ही रोगी एवं व्याधि के कारागार में सड़ा करते हैं।

(८) भोजन के आरंभ एवं अंत में कभी भूलकर भी जल नहीं पीना चाहिये। हाँ, भोजन के मध्य में थोड़ा जल पी

लेना अवश्यमेव लाभप्रद होता है। भोजन के मध्य में जल न पीने से कभी-कभी भोजन की गर्मी मन्दाग्नि उत्पन्न कर दिया करती है। और इससे हृदय में जलन भी होने लग जाती है। यदि हो सके तो भोजन के अन्त में थोड़ा गाय का तक्र (छाछ) अवश्यमेव पी लिया करें। इससे भोजन के पचने में बड़ी सहायता मिलती है।

मांस

ॐ प्राणायाम के लिए मांसहार इतना हानिकारक सिद्ध है कि शायद इतनी कोई अन्य वस्तु होगी ही नहीं। जैसे मुर्दे को जीवित करने में मनुष्य असमर्थ है, वैसे ही प्राण भी मांस रूप मुर्दे को जीवित करने में असमर्थ है। या यों कहो कि जितनी शक्ति मनुष्य को मुर्दे के जीवित करने में लगती है, उतनी ही शक्ति प्राण की मांस को पचाने में लगती है। जैसे सेर भर वजन के उठाने में एक दुबले पुरुष का प्राण भी शान्त एवं स्थिर रहता है; परन्तु ढाई तीन मन का बोझ उठाने में एक बलिष्ठ के प्राण भी व्याकुल हो जाते हैं, वैसे ही फल, दुग्ध, अन्नादि आहारों को तो दुबले प्राण भी पचा सकते हैं; या यों कहो कि जीवन दे सकते हैं और मांस-जैसे कठोर मुर्दे आहारों को पचाने एवं जीवित करने में तो बलिष्ठ एवं शक्तिशाली प्राण भी व्याकुल हो जाते हैं। अतः प्राणायाम के उपासकों को मांस-भोजन कभी नहीं करना चाहिये। इसके पचाने, जीवित करने में प्राण को अधिक से

अधिक शक्ति लगानी पड़ती है। जिससे प्राण की पाचन-शक्ति, जीवन-शक्ति, पोशक-शक्ति, उद्धारक-शक्ति नष्ट हो जाती है। इस पाचन-शक्ति के नष्ट हो जाने से यह मांस रूप मुर्दा उदर में सड़ने लगता है और इसी सड़न से मांसाहारी का नाश हो जाता है। और हार, झकमार उसके प्राण उसे छोड़ भाग जाते हैं। प्राण-धारण ही जीवन और प्राण-त्याग ही मृत्यु है।

मादक वस्तुएँ

प्राणायाम के उपासक पुरुषों को मादक—नशीली वस्तु को कभी नहीं खाना चाहिये। मादक वस्तुओं के खाने से प्राण की गति में विप्लव उत्पन्न होता है। प्राण की उत्तेजना से प्राणायाम का होना असम्भव से भी दुस्तर है। मादक पदार्थों से वीर्य भी फटकर फटे हुए दुग्ध की भाँति निर्जीव, स्निग्धता-रहित हो जाता है। फटे हुए वीर्यवाले युवक के प्राण थोड़े ही परिश्रम से व्याकुल हो जाते हैं और प्राणों की व्याकुलता ही मृत्यु का सन्देश है। फिर इन मादक पदार्थों में अलाकोहल नामक विष अधिक मात्रा में होता है, जिसको डाक्टरों ने जीवननाशक ही सिद्ध किया है। मादक वस्तुओं की हानि हमारे पूर्वजों ने वैदिक काल में ही देख ली थी। अतः उनका सेवन धार्मिक एवं स्वास्थ्य दोनों ही दृष्टियों से निषेध किया गया है। योग-शास्त्र में भी हानिप्रद मानते हैं। कबीर, नानक, रामदास आदि के समय में भी इनका विरोध जोरों से होता रहा। कबीर जी कहते हैं—

'गृहस्थी होकर सुनावे ज्ञान, अमली होके लगावे ध्यान।
साधु होकर छाने भंग, कहत कबीर यह तीनों ठग ॥'

नशे की धुन में ध्यान लगाना सिवा ढोंग, ठगी के और कुछ भी नहीं है। कुछ मादक वस्तुओं के यहाँ नाम दिये जाते हैं जो प्राणायाम, योगमार्ग, स्वास्थ्य-जीवन में विष का काम करती हैं। वह ये हैं:—गाँजा, सुलफा, अफीम, भाँग, शराब, कोकीन, तम्बाकू, नस्य, चाय, काफी आदि। ये चीजें बिल्कुल त्याज्य हैं। यदि किसी को चाय का व्यसन लगा हुआ हो तो वह तुलसी एवं बिल्व के पत्तों की चाय बनाकर पी सकता है। वह पूर्वोक्त हर एक विषय में लाभप्रद होगी। तुलसी की चाय पीनेवाले को ज्वर तो शायद उम्र भर नहीं आयगा। बिल्व की चाय ठंडी करके पीने से वीर्यदोषी के लिए बड़ी लाभप्रद होती है।

यह बात बावन तोले पाव रत्ती सत्य है। परन्तु तुलसी के विरोधी पदार्थों से बचना आवश्यक है। पूर्वोक्त मादक पदार्थों के लिए इतना ही कहना यथेष्ठ है कि इनसे उत्पन्न होनेवाले रोग कुल-परम्परागत बन जाते हैं। अतः इन सबको ही त्याज्य समझना चाहिये। देखिये, प्रकृति का नियम कैसा बलवान है कि किसी भी मादक वस्तु को कोई पशु-पक्षी सेवन नहीं करता। धन्य है, इस मनुष्य समाज जो को प्रकृति के नियम तोड़ने में पशु-पक्षियों से भी आगे बढ़ गया है।

३–प्राणायाम

(१)

प्राण का महत्व

आपको विदित हो कि अन्न, फल, फूल, दुग्धादि भोजनों के बिना भी जीवन जैसे कुछ दिन, मास, वर्ष तक रह सकता है वैसे ही जल के बिना भी मनुष्य कुछ घण्टे, कुछ दिन जीवित रह सकता है। ॐ का निजी अनुभव भी है। एक समय मैंने दुग्धाहार करते हुए दो मास तक जल नहीं पिया था। इससे न तो मुझे कोई हानि ही हुई, न हानि की संभावना थी। परन्तु प्राण के बिना मनुष्य एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। तभी तो उपनिषदों में प्राण को ही सर्वश्रेष्ट एवं सर्वज्येष्ठ कहा है। जीवन ही प्राणों का महत्व है। इस जीवन-रूप प्राण के पृथक होते ही मनुष्यत्व का नामोनिशान मिट जाता है। प्राण से भिन्न जितने ही हमारे अवयव हैं, उन सबके बिना हमारा जीवन रह सकता है; परन्तु प्राण से रहित हमारे जीवन की गन्ध भी उड़ जाती है। हमारा जीवन-रूप प्राण हमसे पृथक् हो जाते हैं। अस्तु, प्राण ही हमारा जीवन है और जीवन ही प्राण का महत्व है।

(२)

प्राण की स्थिति का महत्व

जब तक प्राण देह में बँधा हुआ स्थित है, तब तक चित्त संकल्प-विकल्पों से रहित निराकुल रहता है और जब तक दृष्टि भ्रुवों के मध्य में जमी हुई रहती है, तब तक मृत्यु का भय कहाँ है ? अर्थात् कहीं भी नहीं है। मृ—प्राण त्यागे धातु से मृत्यु बनता है। प्राण का हमको त्याग कर चला जाना ही मृत्यु है और प्राण का हमारे में रहना ही जीवन है। प्राण का नाम अश्व है। जैसे नियम से अधिक दौड़ने से अश्व (घोड़ा) मर जाया करता है, वैसे ही प्राण भी अधिक दौड़ाने से हमें त्याग देता है। अतः हमें चाहिये कि इस अपने जीवनोद्धार के प्राण को चौबीस घण्टा में एक दो मिनट विश्राम देकर स्थित अवश्य करें। प्राण की विश्रान्ति—स्थिति में हमारा जीवन है, और प्राणों के विप्लव में ही हमारी मृत्यु है। याद रहे कि प्राणों की विश्रान्ति में ही हमें शान्ति है और प्राणों के सुख में ही सुख है। प्राण की पुष्टि में ही हमारी पुष्टि है; प्राण के आनन्द में ही हमें आनन्द है; प्राण की विजय में ही हमारी विजय है और प्राण के क्षय में ही हमारा क्षय है। प्राण के जीवन में ही हमारा जीवन है। प्राण ही हमारी मृत्यु, क्षति, प्राज्या, और विजय है। अतः हमें चाहिये कि चौबीस घण्टों में मिनट दो मिनट, दस-पाँच मिनट प्राणों को

स्थित करके उसे विश्राम अवश्य देवें। इसीमें ही हमारा जीवन, सुख, शान्ति, आनन्द, एवं कल्याण छिपा हुआ है।

३

प्राण हमको क्यों त्याग देता है?

ॐ आपको विदित है कि जिस घर में एक व्यक्ति को अनुचित एवं आवश्यकता से अधिक कष्ट होने लगता है, वह व्यक्ति उस घर में अधिक दिन तक कैसे रह सकता है? जब आपके शरीर-रूप घर में आप प्राण को अनुचित एवं आवश्यकता से अधिक कष्ट देते हैं तब प्राण आपके शरीर रूप घर को छोड़कर चला जाता है। क्या आप अपने हृदय पर हाथ रख कर देख या कह सकते हैं कि आप तो चौबीस में से बारह घण्टे विश्राम लेवें और आपका प्राण चौबीसों घण्टे दौड़ लगाता रहे। क्या यह अनुचित एवं अनावश्यक असह्य कष्ट नहीं है? क्या आपने अपनी आयु भर में प्राण को एक सेकण्ड भी विश्राम दिया है? यदि नहीं तो क्या यह अन्याय की पराकाष्ठा नहीं है? बस, यह अन्याय ही आपको मृत्यु के घाट उतारता है। यदि अपने विश्राम के सदृश आप अपने प्राण को भी एक-दो मिनट विश्राम दे दें; तो क्या कभी प्राण आपको त्याग सकता है? कदापि नहीं। यही कारण प्राण का आपको त्यागने का है। यदि आप इस अपनी त्रुटि को आज ही त्याग कर प्राण को विश्राम देने

लगें, तो फिर प्राण आपका युगों तक भी त्याग नहीं करेगा। इसीमें आपका जीवनामृत है।

४

प्राण का दीर्घत्व

ॐ आपको मालूम है कि गंगा आदि नदियों का महत्व हमारे पूर्वजों ने क्यों स्वीकार किया है? इसलिए कि वे दीर्घ वहती हैं। दीर्घत्व का अर्थ यह नहीं है कि वे लम्बी बहती हैं। दीर्घत्वका अर्थ यह है कि वे उद्‌गम-स्थान से प्रवेश-स्थान तक जल-धारा को टूटने नहीं देतीं। अतः इन्हें गन्दे नाले भी गन्दी नहीं बना सकते हैं; अपितु वे इनमें मिलकर शुद्ध, पवित्र एवं स्वच्छ बन जाते हैं। कहाँ तक कहें; वे नाले नाले न रहकर गंगा आदि स्वच्छ, पवित्र, पापनाशक हो जाते हैं। वैसे ही दीर्घ प्राणों में अदीर्घ, अस्वच्छ, निर्बल प्राण भी मिलकर सबल, आरोग्यवर्द्धक, शक्तिशाली हो जाते हैं। अतः पूर्वोक्त नदियों के महत्व का कारण उनका दीर्घत्व ही है। वैसे ही प्राणों का महत्व भी दीर्घत्व ही है। अतः जो प्रायः चौदह सौ फुट के फुसफुसों में सर्वत्र दीर्घगति करता है, वह शरीरमात्र की सर्वत्र गन्दी नालियों में बहनेवाले विस्फोटक वायु एवं मलीन रक्त को शुद्ध, पवित्र बना अपना रूप बना लेता है। जिस फुसफुस के भाग से वायु का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, उस ही फुसफुस के भाग का क्षय होने लगता है।

इसी क्षय का नाम क्षयी रोग अथवा थाइसिस (Phthisis) है और यहाँ से ही मनुष्य की मृत्यु का प्रारंभ होता है। इस प्राण के दीर्घत्व का दूसरा कार्य यह है कि वह चौबीस घण्टों में मनुष्य के शरीर से इतना विष बाहर निकालता है, जिससे बारह हाथी मर जावें। जिसके प्राण का दीर्घत्व टूट जाता है और दीर्घत्व के टूट जाने से जिस अंग में वायु का आना रुका; उसही अंग में पूर्वोक्त विष ठहरकर उस अंग को मुर्दा एवं निर्जीव बना डालता है। इस निर्जीवत्व का अंग-प्रति-अंगों पर साम्राज्य होना ही मृत्यु का दिवस कहा जाता है। अतः हमें प्राण को इतना दीर्घ बनाना चाहिये जिससे उत्पत्ति से प्रवेश तक उसमें टूट-विच्छेद न पड़े। इसीमें ही हमारी जीवन-आरोग्यता निवास करती है। अन्यथा हम जीवित ही मुर्दे हैं; क्योंकि हमारा पाँच सेर वजन उठाते हुए भी दम चढ़ जाता है और पन्द्रह बीस कदम दौड़ने में ही श्वास उखड़ने लगता है। हमको पावभर दुग्ध से दस्त और आना भर मक्खन से कब्ज हो जाता है। अब ॐ आपही कहें कि क्या यह जीवन है ?

५

प्राण वीरभद्र है

ॐ आपका प्राण ही वीरभद्र है। प्राण के बिना एक साहसी वीर, शूर पुरुष की जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है। अतः प्राण ही वीरत्व एवं भद्रत्व का दाता-विधाता है। वीरभद्र शिव, शंकर

का गया है। जो पुरुष प्राणरूप वीरभद्र की उपासना करते हैं, उन्हीं पुरुषों को प्राण वीरत्व और भद्रत्व, कल्याण, शिव, शंकर की प्राप्ति करवाता है। प्राण ही की उपासना से आजकल के बलिष्ठ पुरुष राममूर्ति आदि अपनी छातियों पर सैकड़ों मन के पत्थर चूर्ण करवा देते हैं। प्राण ही की उपासना से आज शरीरों का संकोच विकास करके बड़ी-बड़ी शृङ्खलाएँ, जंजीर तोड़ दी जाती हैं। प्राण ही की उपासना से योगी लघु, दीर्घ, हलके भारी, ठोस एवं पोले हो जाते हैं। प्राण की ही उपासना से योगी वज्र की भाँति बलिष्ठ, शक्तिशाली एवं मजबूत हो जाते हैं। अतः हमें प्राणरूप वीरभद्र की उपासना करके वीरत्व, भद्रत्व, कल्याण, शक्ति बलादि सर्वगुणसम्पन्न होना चाहिये।

६

मन एवं प्राण

ॐ मन एक वह दिव्य शक्ति है, जिससे मनुष्यत्व का उत्थान हुआ है। मन, मैन (man) मनुष्य, मन्न यह रूप नाम मनके ही हैं। मन की ही दूसरी अवस्था का नाम चित्त है। और मन की तीसरी अवस्था का नाम बुद्धि है। मन की इन तीन अवस्थाओं को ऐसा समझना चाहिये, जैसे जल की तीन अवस्थाएँ होती हैं। प्रथम वाष्प (भाप), दूसरा मेघ और तीसरा जल। जैसे वाष्प (भाप) का निरोध करने से बड़े-बड़े महान यंत्रों को मिनटों में मीलों की गति प्रदान की जाती है; जिसके समष्टिकरण से महान

से महान हवाई जहाज आकाश में प्रयाण कर रहे हैं; परन्तु इस से नहाने, धोने, तैरने पीने आदि जल की क्रियाओं की पूर्त्ति नहीं हो सकती। अतः इसी पूर्त्ति के लिए भाप को वादल का रूप वनाना आवश्यक है। अस्तु उसी प्रकार मन की प्रथम सूक्ष्म अवस्था को निरोध, समष्टी करने से उपासक महान से महान शक्ति को अपने स्फूर्ण मात्र से क्षणभर में हिला सकता है; मिनटों में ही दूर प्रदेश की घटना अनुभव कर सकता है एवं वड़ी ठोस से भी ठोस शक्ति को आकाश में उड़ा सकता है। परन्तु इसका संग्रह पूर्णतया होना चाहिये। इसी वाष्प, भाप, धुएँ का नाम प्राण कह सकते हैं। जिसके युक्त होने से हम प्राणी कहे जा सकते हैं, उसको ही सूक्ष्म एवं लिङ्ग शरीर कहते हैं। यही व्यक्तिमात्र का जीवन है।

मानस-तत्त्व की दूसरी अवस्था का नाम चित्त है। इस अवस्था में जिस तरह भाप, धूएँ से वादल की शक्ति सुदृढ़, मजबूत, वलिष्ठ, ठोस वनकर कृतकार्य, प्रत्यक्ष होती है; वैसे ही चित्त भी मानस-तत्त्व का वलिष्ट, सुदृढ़, मजबूत, सशक्त, ठोस कृतकार्य, स्वरूप हो जाता है। जैसे वादल अपनी गर्जना से पहाड़ों को विखेर देता है, वृक्ष को उखाड़ फेंकता है, अपनी विद्युत की चमक से विश्वमात्र को चकाचौंध कर देता है, अपने गार्जन से विश्व को शान्त, तृप्त, आनन्दित कर नदी-नाले, हृदों को परिपूर्ण कर देता है, वैसे ही मानस-तत्त्व भी चित्त की भूमि में आकर महान

सिद्धिप्रद हो जाता है। यद्यपि कभी-कभी बादल भी बिना बरसे फट जाया करते हैं; तथापि वह भाप, धूएँ से तो अवश्य बलिष्ठ प्रत्यक्ष कृतकार्य होते हैं, वैसे ही चाहे कभी-कभी चित्त की भावना भी विफल क्यों न हो जाय; परन्तु वह मन के संकल्प-विकल्प रूप धुवों से तो अवश्य शक्तिशाली, पुष्ट एवं प्रत्यक्ष होती है। इसी विफलता के मिटाने के लिए योगसूत्र के प्रथम सूत्र में ही चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग कहा है। इन वृत्तियों का निरोध ही योग की सिद्धावस्था है। इस निरोध के साथ ही साथ प्राण अपने आप सिमटने लगता है। प्राण का सिमटना ही प्राणायाम है।

मानस-तत्त्व की तीसरी अवस्था का नाम बुद्धि है। यह वही भूमिका है जिसमें जाकर अंगिरादि महर्षियों ने वेदों का आविष्कार किया था। यह वही अवस्था है, जहाँ भगवान् वेदव्यास जी ने वेदों के विभाग किये थे। यह वही स्थान है, जहाँ पर भगवान् बुद्धदेव ने बोध-वृक्ष की छाया प्राप्त की थी। यह वही स्थिति है, जहाँ पर जाकर लोग आत्मतत्त्व का निश्चय किया करते हैं। बुद्धि का अर्थ ही आत्मतत्त्व का निश्चय करना है। जिस भाँति भाप एवं बादलों का जल-स्वरूप विश्व को प्रत्यक्ष एवं सुख-स्वरूप हो जाता है, वैसे ही मन का स्वरूप भी साधक की बुद्धि में आकर प्रत्यक्ष एवं आनन्द-प्रद हो जाता है। इस अवस्था में मन की सर्व निर्बलता, निष्फलता भाग जाती है। इसी मन को वेद में दैव मन कहा गया है। यही मन शिव संकल्प नाम से सूचित

किया गया है। इसी मन की भूमि में प्रवेश होने से प्राणायाम की सिद्धि प्राप्त होती है। अतः प्राणायाम के साधकों को प्राणायाम करते समय मानस-तत्त्व पर पूर्णतया ध्यान रखना चाहिये। प्राण एवं मन का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना प्राण एवं जीवन का होता है। या यों कहो कि जितना प्रकाश एवं सूर्य का सम्बन्ध है, उतना ही सम्बन्ध मन एवं प्राण का है। मन के निरोध बिना प्राण का निरोध इतना असंभव है, जितना प्राण के बिना जीवन और सूर्य के बिना प्रकाश। जैसे प्राण के रहने से जीवन का रहना अनिवार्य सिद्ध है, सूर्य के रहने से प्रकाश अनिवार्य है, वैसे ही मन के निरोध से प्राण का निरोध अनिवार्य सिद्ध है। ॐ को ५१ वर्ष की आयु में किसी ने यह नहीं पूछा कि महाराज मेरा प्राण क्यों नहीं रुकता है, अपितु सब यही पूछा करते हैं कि महाराज मेरा मन क्यों नहीं रुकता है। कृपया कोई ऐसी युक्ति बताइये जिससे मेरे मन का निरोध होजाय। इस लोकोक्ति से प्राण की अपेक्षा मन को रोकना आवश्यक है। और साथ ही मन के निरोध से प्राण का निरोध भी अवश्यम्भावी सिद्ध है और प्राण के रोकने से भी मन का रोकना स्वतः सिद्ध है। ॐ का तो यह भी अनुभव है कि प्राणों को और मन को एवं दृष्टि को एकत्रित करने से प्राणायाम अपने आप ही होने लगता है। कुछ भी हो, इस लेख में पाठकों को ॐ का यही कहना है कि जो मन में निरोध बिना प्राणायाम करते हैं, वे योग के

स्थान में रोग को ही प्राप्त करते हैं। अस्तु, प्राण-विज्ञान के साथ मनोविज्ञान का होना ही योग-सिद्धि है।

(७)

मनका निरोध

[मन का स्वरूप]

ॐ हमारे पूर्वजों ने मन को एक जड़ पदार्थ माना है। वस्तुतः यह है भी जड़ ही। इसका सबको अनुभव भी होता है। क्योंकि मन उसी पदार्थ पर जाता है, जिसको हम चाहते हैं। या यों कहो कि जिस वस्तु पर हम इसे फेंक देते हैं, यह उसी वस्तु पर जा पड़ता है। जैसे एक पत्थर का टुकड़ा विना फेंके नहीं उड़ सकता है, वैसे ही मन भी बिना चलाये नहीं चल सकता। हाँ, इसकी गति को हम कुम्हार के चक्र की भाँति कह सकते हैं। जैसे कुम्हार अपने चाक को जितना अधिक बल से घुमा देता है, उतना ही कुम्हार को उसका रोकना कठिन हो जाता है। इसी भाँति से मन को भी प्रेरक जितना अधिक बल से घुमा देता है, उतना ही उसका रोकना कठिन पड़ जाता है। मन के मालिक होने से ही हमें मनुष्य, मैन आदि नाम प्राप्त हुए हैं। या यों कहो कि मन को वश में करके मननशील शान्त बनाने से ही हमारा मनुष्य नाम पड़ा है। चाहे कुछ भी क्यों न हो, हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस दौड़-धूप का कारण मन नहीं; अपितु हम ही हैं। जैसे हम इसे फेंक देते हैं, यह वैसा ही चला जाता

है। जितनी अधिक हमारी इच्छाएँ होती हैं, उतना ही तेज मन जाने लगता है। अतः मन को रोकने का प्रथम कारण इच्छाओं को कम करना ही है। मन को रोकने के लिए वस्तु एवं पदार्थों को त्यागने या नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है; अपितु उससे अपनी इच्छाओं को हटाने की आवश्यकता है। इच्छाओं की निवृत्ति, वैराग्य और अभ्यास से हुआ करती है। यही मनका स्वरूप है।

योगश्चित्तवृत्ति निरोध

ॐ आप ऊपर मन एवं प्राण का सम्बन्ध, मनका स्वरूप समझ ही चुके हैं। इसको उत्तम तरह से समझने पर मालूम होता है कि मन के निरोध किये विना जो प्राणायाम करते हैं, वे योग के बदले रोग को ही प्राप्त करते हैं। अतः प्राणायाम के साथ की चित्तवृत्तियों का रोकना अवश्यम्भावी है। इसी सिद्धान्त का कथन भगवान् पातञ्जलि पुरोक्त योगसूत्र में करते हैं कि योग नाम चित्त की वृत्तियों के निरोध का ही है। जो चित्त की वृत्तियों का निरोध किये विना योग करते हैं, वे कभी प्राणायाम में सफल नहीं हो सकते। अतः ॐ यहाँ मन के रोकने के कुछ साधन बताते हैं। मन के रोकने के साधन योगसूत्र एवं गीतादि ग्रन्थों में सर्वप्रथम ही कह चुके हैं। एक अभ्यास दूसरा वैराग्य। जैसे—'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध।' अभ्यास और वैराग्य से ही उसका (मन का) निरोध होता है। 'अभ्यासेन तु कौन्तेय

वैराग्येण च गृह्यते।' हे कुन्तीपुत्र! मन और वैराग्य अभ्यास से ही पकाया जाता है।

अभ्यास का स्वरूप

ॐ अभ्यास नाम किसी भी कार्य को सिद्ध नहीं होने तक वारवार करने का है। जैसे अभ्यास अर्थात् वारवार करने से कार्य की सिद्धि और उसकी सिद्धि के सुगम उपाय अपने आप सूझने लगते हैं, वैसे ही मन के रोकने के सुगम उपाय अभ्यास वल से स्वतः सूझने लगते हैं। और उन उपायों से मन शीघ्र एवं सुगमता से रुक जाता है। जैसे अभ्यास वल से एक मतिमंद वच्चा भी विद्वान्, सुयोग्य एवं सभ्य वनाया जाता है, वैसे ही यह हठी दुराग्रही, चंचल मन भी अभ्यास के वल से अति उत्तम, शांत-देव वनाया जा सकता है। जैसे अभ्यास से सर्कस आदि खेलों में एक भयंकर कठोर वाघ को गाय के वच्चे के सदृश वना सकते हैं; वैसे ही अभ्यास के वल से हम अपने मन रूपी शेर को उसकी क्रूरता को हटाकर अपनी इच्छानुसार नचा सकते हैं। जैसे अभ्यास के वल से एक पुरुप एक तोते को पिंजरे का इतना प्रेमी वना सकता है कि वह खुला रहने पर भी पिंजरे को छोड़कर नहीं जाता, वैसे ही अभ्यास के वल से मनुष्य मन-रूपी तोते की चंचलता हटाकर अपने हृदय-रूपी पिञ्जर में उसे खुला ही क्यों न छोड़ दे; फिर वह कहीं न जायगा। यही अभ्यास है। इसका प्रयोग करनेवाला सिद्धि को पा सकता है।

वैराग्य का स्वरूप

ॐ वैराग्य नाम किसी भी पदार्थ या वस्तु पर से राग, प्रेम, रुचि हटाने का है। या यों कह सकते हैं कि वैराग्य नाम किसी वस्तु पर घृणा, अरुचि, अनैच्छा का है। जैसे अपनी माता, भगिनी के रूप, यौवन, सौन्दर्य, सम्पन्न होते हुए भी उसको अपनी भोग्या समझने में पूरी घृणा होती है, जैसे विष्टादिक घृणित वस्तुओं से हमें अत्यन्त घृणा होती है, वैसे ही जिन-जिन वस्तुओं, पदार्थों पर हमारा मन जाता है, उन उन पदार्थों पर घृणा, ग्लानि होने का नाम वैराग्य है। तभी तो शास्त्रकार कहते हैं कि तुम इन भोगों को काकविष्टावत् त्याग दो। परन्तु आजकल नहाये-धोये भगत काग के छुए हुए वर्त्तन, भोजनादि सामग्रियों को तो त्याग देते हैं और उसके विष्टारूप विषयों को चाट जाते हैं। सच कहा जाय तो यह संसार की काँय-काँय ही काक है और इस काँय-काँय से बना हुआ विषय ही काक-विष्टा है। काक को त्याग विष्टा में प्रेम करके ही यह भगत आत्मज्ञानी सन्त-महन्त कहा करते हैं कि अजी मन का रोकना बड़ा कठिन कार्य है। इन ही भगत ज्ञानियों को श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र ढोंगी, मिथ्याचारी कहते हैं, क्योंकि ये वैराग्यशून्य हैं। यही वैराग्य का स्वरूप है।

मन को रोकने के साधन

(अ) परिव्राजक श्रीभगवान् शंकराचार्य का अनुभूत प्रयोग—

ॐ भगवान् श्रीशंकराचार्यजी मन को रोकने का जो

प्रयोग बताते हैं, उससे मन बहुत शीघ्र वश में हो जाता है। वे कहते हैं कि इस संसार के विषयों को तो महान अरण्य समझो और मन को इस वन में रहनेवाला भयंकर शेर समझो। मोक्ष की इच्छावाला साधु उसी भांति विषय-रूप वन में न जावे जैसे सिंह से सेवित वन में प्राणी नहीं जाते हैं। और यदि वह गया तो नाश को अवश्य प्राप्त होगा। ॐ आप इस कथन के अनुसार पूर्वोक्त वैराग्य से युक्त होकर कुछ ही दिन जाना छोड़ कर देखें कि आपका मन कुछ ही दिनों में कैसा शान्त होता है। जैसे शेर मांस खाकर बली हो जाता है, वैसे ही मन विषयों से बलिष्ठ, शक्तिशाली होकर साधक को मार खाता है। इससे बचने का विषयों में न जाना मात्र ही एक उपाय है।

(अ) अष्टावक्र मुनि का जनक को बताया हुआ प्रयोग—

'मोक्षमिच्छन्ति चेतात् विषयान् विषवत्त्यजेत्'। ॐ महर्षि अष्टावक्र जनक से कहते हैं कि पुत्र! यदि तू मोक्ष को चाहता है तो विषयों को विषवत् त्याग दे। यही सिद्धान्त साँख्य दर्शन में भगवान् कपिलदेव ने कहा है कि 'ध्यानं निरविष्यम् मनः'। मन को विषयों से रहित बनाना ही ध्यान है। प्रयोग अनुभूत है; चाहे कोई कर के देख ले।

(इ) कुछ नये अनुभूत प्रयोग—

(१) ॐ नियम एवं प्रतिज्ञा पालन से भी मन का निरोध और आत्मबल की प्राप्ति होने में बड़ी सहायता मिलती है। जो

पुरुष प्रतिज्ञा एवं नियम के कच्चे हैं, कमजोर होते हैं, वे कभी किसी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। सफलता का न होना आत्मबल एवं मन की खिन्नता का पक्का कारण है। मन के रोकने वाले पुरुषों को दृढ़प्रतिज्ञ नियमपालक अवश्य होना चाहिये ।

(२) ॐ किसी भी प्राकृतिक हरे-भरे रमणीय एकान्त जंगल में बैठकर किसी मनोहर वृक्ष, पशु-पक्षी को एकाग्र मन से देखा करे। हो सके तो त्राटक ही किया करे। इस अभ्यास से मन में बहुत शीघ्र शान्ति आने लगती है; परन्तु इस स्थिति में जब मन चंचल न हो, तब तक ही बैठना लाभप्रद है। चञ्चल होने पर हठ करने से हानि की संभावना है।

(३) ॐ किसी शुद्ध पवित्र स्थान पर बैठकर जिह्वा से रहित केवल हृदय में मन की भावना से एक से सौ तक "ॐ" का उलटा-सुलटा जप अभ्यास के बल से एक सहस्र तक बढ़ाना चाहिये। उलटे-सुलटे का अर्थ यह है कि एक से सौ तक जाना और सौ से एक तक आना। ऐसे ही हजार तक करने से आपका मन अवश्य आज्ञावर्ती होगा।

(४) ॐ सिरसासन लगाकर हृदय की भावना से "ॐ" का जप करने से भी मन का बहुत शीघ्र निरोध हो जाता है। हो सके तो पूर्वोक्त रीति से उलटा-सुलटा ही किया करे। सिर-सासन सिर के बल खड़े होने को कहते हैं।

(५) ॐ किसी शुद्ध पवित्र स्थान में बैठकर अपने मस्तक ब्रह्मरन्द्र में एक छोटी-सी रमणीक वाटिका का ध्यान कर उसके ठीक मध्य के पर्यंक पर अपने को मय शरीर के बैठे देखा करे। प्रिय ॐ यह ध्यान नहीं है, यह समाधि की सच्ची कुंजी है। आप इसे कुछ दिनों तो करके देखें, आपको क्या आनन्द प्राप्त होता है। ॐ आप एक इस ध्यान से अलोक लोक के निवासी ही बन जायँगे। यदि आप इस ध्यान को अपने हर एक कार्य में परिणत करेंगे तो आपको और भी शीघ्र सफलता प्राप्त होगी। इसका अर्थ यह है कि आप अपने चौबीस घंटों का सोना, जगना, लिखना, पढ़ना, खाना-पीना सभी कार्य इस वाटिका में करने का अभ्यास किया करें, मानो सब कार्य इसी में हो रहे हैं। मान लीजिये कि आप एक दफ़्र के बाबू हैं। आप अपने को मय दफ्तर के इस वाटिका में ही काम करते देखा करें। जिस दिन यह ध्यान आपका परिपक्व होगा, उसी दिन या उस समय आपके हाथ से लेखनी छूट कर मेंज पर गिर जायगी और आप ब्रह्मरन्द्र में आनन्दामृत पान करेंगे। चाहे कर देखें।

(६) ॐ आप किसी शुद्ध पवित्र निर्जन स्थान में बैठकर ऐसा किया करें कि मैं सचमुच कुछ भी नहीं हूँ। जब आप इस संकल्प के बल से बाहर के सब कुछ को भूल जायँगे, तब आप अन्तरात्मा के तत्त्व में जा मिलेंगे। बाहर के सब कुछ को भूलकर अन्तर के सब कुछ में जाना ही सच्ची समाधि है। इस अभ्यास

से प्राणायाम स्वतः सिद्ध होने लगता है। प्रयोग अनुभूत है। करने से फल मिलता है।

(७) ॐ यदि आप मनको अति शीघ्रही शान्त करना चाहते हैं, तो कुछ दिन एकान्त में रहकर चन्द्रमा में त्राटक करें। इस त्राटक से मन बहुत ही शीघ्र रुका करता है। क्योंकि चन्द्रमा का और मन का बाप-बेटे का-सा सम्बन्ध है। जैसे पिता-पुत्र में स्वभाव से ही शान्ति-प्रियता रहा करती है, वैसे ही मन और चन्द्रमा के मिलाप में शान्ति एवं प्रियता स्वभाव सिद्ध है। यजुर्वेद में कहा है कि 'चन्द्रमा मनसो अजायत'। चन्द्रमा मन से ही तो जन्मा है। जैसे पिता, पुत्र को प्राप्त करके शान्ति प्राप्त कर लेता है, वैसे ही मन चन्द्रमा को प्राप्त करके शान्ति प्राप्त कर लेता है। इस त्राटक से नेत्रों को भी अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है। यह त्राटक वीर्य का भी स्तम्भक, शोधक तथा पुष्टिप्रद है।

(८) ॐ आप अपने हृदय पर एक स्वच्छ, श्वेत, चमकीला कागज ध्यान से रखें। इस पर बड़ी स्वच्छ रंगीली स्याही से मनमोहक "ॐ" लिखने का अभ्यास करें। जिस दिन आप इस अभ्यास से अपने हृदय के कागज पर लिखकर ऐसा देखेंगे जैसे कि बाहर कागज पर देखा करते हैं, तभी समझना कि मेरा मन शिव संकल्प दैवगति को प्राप्त हो गया है। यही मन आपको आरोग्यता, सुख, शान्ति, आनन्द एवं सर्वस्व देनेवाला है। येही मन रोकने के सुगम उपाय हैं।

(९) ॐ आत्म संयम ।

प्राण और रक्त

जैसे सूर्य में अशुद्ध वस्तु को शुद्ध बनाने की, निर्जीव को सजीव बनाने की दिव्य शक्ति है, वैसे ही प्राण में भी अपवित्र को पवित्र, निर्जीव को सजीव बनाने की दिव्य शक्ति है। इसी सिद्धान्त को लेकर हमारे आचार्यों ने प्राण को शरीरस्थ सविता कहा है। (प्राणं वै सविता)—प्राण ही सबका जीवनदाता, जन्म-दाता सविता सूर्य है। जैसे बाह्य सूर्य मात्र से स्फूर्ति, कंपन, स्पन्दन एवं चेतनता बनती है, वैसे ही रक्त में भी प्राण-रूपी सूर्य से ही उष्णता, कंपन, स्पन्दन, स्फूर्ति एवं चेतनता आती है। प्राण के न रहने से रक्त उसी समय गन्दा, घृणित हो जाता है; अर्थात् उसमें बिलकुल जीवन, कंपन, स्पन्दनता, एवं चेतनता नहीं। यदि प्राण की ओरा तेजस रक्त पर न पड़े; तो मनुष्य का जीवन क्षणभर में मिट जाता है। अतः रक्त का जीवनदाता प्राण और प्राण का प्राणायाम है। यद्यपि डाक्टर लोग मनुष्य के जीवन रक्त की धुक-धुकी कंपन पर ही मानते हैं, तथापि डाक्टर इसके भी मानने में आनाकानी नहीं कर सकते कि रक्त की धुकधुकी का मुख्य कारण प्राण ही है। अतः जीवन के इच्छुक मनुष्यों को प्राण का और रक्त का इतना सम्बन्ध मानना चाहिये कि जितना सूर्य और प्रकाश का है। जैसे प्रकाश, बिना सूर्य के कोई वस्तु नहीं है, वैसेही प्राण बिना रक्त भी कोई वस्तु नहीं। यदि रक्त कोई

वस्तु नहीं, तो जीवन भी कोई वस्तु नहीं है। इसी कारण से योग-शास्त्र में रक्त-जीवन के लिए प्राण-जीवन ही सर्वश्रेष्ठ तत्त्व माना है। अब शंका यह होती है कि यदि प्राण-संचार ही रक्त-संचार जीवन का मूल कारण है, तो समाधिस्थ योगियों में प्राण के स्थिर होने पर रक्त कैसे रह जाता है यानी उनमें रक्त का पानी क्यों नहीं होता ? इसका उत्तर यह है कि जिस समय तक शरीर के किसी विभाग में प्राण स्थिर रहता है, उस समय तक रक्त कभी ठण्डा, दुर्गन्धित पानी नहीं हो सकता। जैसे घर के किसी भी कोने में दीपक लगाने से अँधेरे को घर में नहीं घुसने देता है और उसका प्रकाश सभी वस्तुओं पर पड़ता ही रहता है; ठीक उसी तरह से प्राण-रूप सूर्य योगियों के मस्तक-रूप मूलकेन्द्र में स्थिर रहता है। प्राण भी शरीर मात्र के अवयवों के रक्त पर ओरा तेजस प्रकाश डालकर जीवन देता रहता है। इसी कारण योगियों का रक्त जीवित रहा करता है। दूसरा उदाहरण सूर्य का है। जैसे केन्द्रस्थ रहता हुआ भी सब विश्व को जीवन देता रहता है, वैसे ही प्राण भी योगियों के मस्तक में रहता हुआ भी शरीर-रूपी विश्व को जीवन देता रहता है। मस्तक में ही नहीं प्राण शरीर के किसी अंग में अपनी इच्छा के अनुकूल स्तंभित करने से स्तम्भक के रक्त पर अमृत की वर्षा किया करता है। जिससे स्तम्भ का रक्त पर अमृत रूप होकर स्तम्भक के जीवन को दिव्य बनाता है। इस पर ही विश्व का जीवन लटक रहा है। इस संबन्ध

के टूटते ही जीवन का नामोनिशान मिट जाता है। इसका नाम मृत्यु है। यदि आप अपने जीवन को सुरक्षित रखना चाहें तो इस प्राण और रक्त के सम्बन्ध को सुरक्षित रखें।

पुरुष हर एक परिस्थिति में प्राणायाम कर सकता है

ॐ से कितने ही पुरुष कहा करते हैं कि गृहस्थ से प्राणायाम नहीं हो सकता। ऐसे पुरुषों से ॐ कहा करते हैं कि प्राणायाम की दीक्षा तो गृहस्थ होने से भी प्रथम दी जाती है। यदि ऐसा न होता तो सन्ध्या में प्राणायाम क्यों होता, जो कुमार को गृहस्थ होने से भी प्रथम सिखाई जाती है। सन्ध्या में प्राणायाम से अधिक महत्व की दूसरी कोई वस्तु नहीं है। भीष्मजी तो सन्ध्या से ही दीर्घ आयु प्राप्त होना कहते हैं। जैसे—'ऋषियो' नित्य सन्ध्यवत्वात् दीर्घ आयुराप्नुयात्।' ऋषियों ने सन्ध्या से ही दीर्घ आयु को प्राप्त किया। वस्तुतः सन्ध्या का अर्थ भी प्राण अपान की सन्धि ही होता है। यद्यपि सन्ध्या इससे भी बड़ी महत्व की वस्तु सिद्ध होती है, इसके एक-एक शब्द में ज्ञान-विज्ञान भरा पड़ा है, तथापि प्राणायाम को सन्ध्या का जीवन कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है। जब सन्ध्या ही मनुष्य के गृहस्थ जीवन की मंगल-यात्रा बनानेवाली वस्तु है, तब गृहस्थ से प्राणायाम नहीं हो सकता—इस वाक्य का अस्तित्व ही कैसे माना जावे! इसका अस्तित्व मानने से सन्ध्या का ही अस्तित्व मिट जाता है, और सन्ध्या का अस्तित्व मिट जाने से विश्व के जीवन की ही इतिश्री समझनी

चाहिये। सन्ध्या के अस्तित्व को मनुष्य से पशु-पक्षी तक सब जीव-जन्तु स्वीकार करते हैं। और वह उस समय एक-एक प्रकार का प्राणायाम अवश्यमेव करते हैं। अतः मनुष्य भी अपनी हर एक परिस्थिति में प्राणायाम कर सकता है। प्राणायाम प्राण पर अपनी चित्त की वृत्ति को रखने को कहते हैं। जिस समय मनुष्य की वृत्ति और प्राण एकसूत्र में बद्ध हो जाते हैं, उसी समय प्राणायाम हो जाता है। इसको ॐ एक प्राणायाम का उदाहरण देकर पाठकों के हृदय में स्थिर करना चाहता है। गृहस्थी का सबसे बड़ा झंझट चक्की पीसने का है। प्राणायाम का जिज्ञासु वहाँ भी प्राणायाम कर सकता है। कुछ दिन पूर्व ॐ से एक माई ने पूछा था कि हम भी प्राणायाम कर सकती हैं या नहीं? ॐ ने कहा कि जब अपने जीवन के लिए एक चींटी भी प्राणायाम करती है, तब अपने जीवनार्थ तुम क्यों नहीं कर सकती हो। माई ने कहा कि हमें तो चक्की पीसनी पड़ती है। क्या प्राणायाम में चक्की पीसना वर्जित नहीं है? ॐ ने कहा कि प्राणायाम में कोई भी कार्य वर्जित नहीं है। प्राणायाम में तो प्राण पर से वृत्ति हटाना ही वर्जित है।

यदि आप चक्की पीस रही हैं और आपकी वृत्ति स्थिर है या यों कहो कि प्राण को पकड़ रही हैं, तो सत्य ही आप प्राणायाम भी कर रही हैं। और इस चक्की पीसने के समय में आप दिव्य जीवन, दिव्य स्वास्थ्य, दिव्य कान्ति एवं दिव्य सौन्दर्य को

सञ्चय कर रही हैं। या यों कहो कि योगियों के मार्ग पर चढ़ती जा रही हैं। माई ने कहा कि क्या आप इसकी कुछ विशेष विधि भी समझा सकते हैं, जिससे हम भी लाभ प्राप्त कर सकें। ॐ ने कहा कि हाँ, क्यों नहीं, आप सुन लीजिये। विधि यह है—

'आप अपनी चक्की को किसी शुद्ध सुथरे खुले कमरे में रक्खें; और चार बजे से प्रथम ही पीसने बैठें। चक्की चलाने से प्रथम चित्त की वृत्तियों को प्राण के साथ जोड़ने की चेष्टा करें। ओष्ठों को बिलकुल बन्द करलें अर्थात् मुख से श्वास बिल्कुल न लेवें। श्वास को नासिका से ही लें और नासिका से ही रेचक किया करें। सबसे प्रधान बात ध्यान में रखने कि यह है कि एक श्वास-प्रश्वास में आप चक्की के कितने चक्कर लगाती हैं या पचीस श्वासों में कितना आटा पीसती हैं। मानलो कि आपने आज पचीस श्वासों में सेर भर आटा पीसा है, तो आप कुछ ही दिन के प्राणा-याम के अभ्यास से एक-दो श्वास में सेर-दो-सेर आटा पीस सकेंगी। यदि आप एक श्वास में पचीस चक्कर लगाती हैं तो पचीस दिनमें सौ अवश्य लगावेंगी। परन्तु श्वास को शक्ति से अधिक रोकने की कोशिश कभी न करनी चाहिये। जब एक श्वास में सौ चक्कर लगावेंगी, तब आप की चक्की इशारे मात्र से ही चलती मालूम होगी और आप इसे देख अपने में फूली न समावेंगी। एक बात और ध्यान में रखने की है। प्राण को पूरक और रेचक बहुत शनैः-शनैः किया करें; अन्यथा आटे का पराग अन्दर जाने की

सम्भावना है; जिससे दमा आदि होने की भी आशंका है। अब पाठक ही कहें कि गृहस्थों के लिए प्राणायाम है या नहीं। वे क्यों नहीं कर सकते? ॐ की समझ में तो जो जीना चाहें, उनके लिए प्राणायाम अनिवार्य विधान है। प्रयोग अनुभूत है। जी चाहे कोई कर देखें।

स्मष्ठी प्राणायामों का फल

ॐ प्राण के उपासक का शरीर तपाये हुए स्वर्ण-जैसा कान्तियुक्त हो जाता है। इस उपासना के विधिपूर्वक होने से साधक को रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि कोई भी नहीं सताते। उसका शरीर पुष्प के सदृश हलका, सुगन्धित, आरोग्य, सुडौल, कान्ति एवं तेज से युक्त हो जाता है। उसके मुखारविन्द पर शान्ति एवं प्रसन्नता झलका करती हैं। उसको किसी भी पदार्थ में लोलुपता नहीं रहती। उसके खाये हुए पदार्थों का मल-मूत्र बहुत ही कम हुआ करता है। उसका शरीर सुडौल एवं सामान्य खिंची हुई रेखा की भाँति, समान हो जाता है। उसको शोक, मोह, क्रोध, ईर्षा, द्वेष, कायरता, काम, अशान्ति, भय, अज्ञान, तो मानो छोड़कर ही भाग जाते हैं। यही प्राणायाम की प्रथम भूमिका के चिह्न हैं। करने से विश्वास होगा।

(क) प्राणायाम का अर्थ।

ॐ प्राणायाम का अर्थ प्राणों का व्यायाम, स्वच्छता, विकास, पुष्टि, गति, निरोध, अचलता, दिव्यता, शान्ति, आनन्द,

सुखादि होते हैं। अर्थात् प्राणायाम से प्राणों में गति स्वरूप व्यायाम होता है। व्यायाम से प्राण स्वच्छ, पवित्र, शान्ति की भूमि में अचल स्थित हो जाता है। यहाँ इसको मृत्यु भी नहीं हिला सकती। यही इसकी शक्ति एवं पुष्टि का परिचय है। यही प्राणायाम का अर्थ है।

(ख) प्राणायाम के व्यायामों की विशेषताएँ।

(१) प्राणायाम से मन और चित्त की वृत्तियों का निरोध होकर साधक को निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त होता है।

(२) प्राणायाम से प्राणमय कोष और सूक्ष्म शरीर की पुष्टि होती है, जो हमारे जीवन का केन्द्र-स्थान है।

(३) प्राणायाम से साधक का प्राणों पर एवं सूक्ष्म शरीर पर पूर्णतया अधिकार हो जाता है। इस अधिकार के होने से साधक अपने प्राणों को जहाँ चाहे वहाँ थाम सकता है और सूक्ष्म शरीर को भी परिवर्त्तन में ला सकता है।

(४) प्राणायाम से साधक की इन्द्रियों का निरोध बहुत शीघ्र हो जाता है।

(५) प्राणायाम से साधक इच्छा और संकल्प सिद्ध हो जाता है।

(६) प्राणायाम से वीर्य ऊर्ध्वगामी और अमोघ हो हो जाता है।

(७) इससे साधक को दिव्य बुद्धि प्राप्त हो जाती है।

(८) प्राणायाम से साधक की मननशक्ति एवं धारणा-शक्ति का विकास हो जाता है।

(९) प्राणायाम से साधक शरीर को रुई-सा हलका, रेशम-सा कोमल, पृथ्वी-सा भारी एवं पत्थर-सा कठोर कर सकता है।

(१०) प्राणायाम से साधक में आत्मबल की वृद्धि होती है।

(११) प्राणायाम से साधक की विषय-वासना का नामो-निशान मिट जाता है।

(१२) प्राणायाम वाला पुरुष महान से महान शारीरिक कार्य को इच्छा एवं मन के संकल्प से कर सकता है।

(१३) प्राणायाम के पूर्णतया सिद्ध होने से साधक आकाश एवं पृथ्वी में प्रवेश कर सकता है। अग्नि आदि भी उसको बाधा नहीं पहुँचा सकतीं।

(ग) प्राणायाम से समाधि एवं व्यायाम के भेद

ॐ जो साधक प्राणायाम से व्यायाम करना चाहता है, उसे प्राण-वायु पेट में भरकर सब अंग-प्रत्यंगों को अतिबल से फैलाना चाहिये; ताकि शुद्ध वायु सर्व शरीर को पवित्र कर शरीर में शुद्धता का विकास करे और व्यायाम के लिए प्रायः सभी प्राणा-याम खड़े होकर करने से अधिक लाभ होता है। परन्तु मानसिक भाव, प्राण और शरीर के स्पर्श में ही रहना चाहिये। और जो साधक प्राणायाम समाधि के लिए करना चाहे, उसे प्राण-वायु पेट में भरकर उड्यान-बन्ध, मूल-बन्ध एवं जालंधर-बन्ध अवश्य

लगाने चाहिये। इन बन्धों के लगाने से प्राण कुंडलनी-शक्ति पर आघात पहुँचाता है। इस आघात से वह सुष्मणा नाड़ी के मार्ग को छोड़कर सीधी डंडाकार हो जाती है। कुंडलनी-शक्ति का डंडाकार होना ही समाधि की प्रथम सफलता है। इसके समसूत्र में होते ही प्राण मेरु-ग्रन्थियों को भेदन करने लगता है और वह कुछ ही काल में क्रम से ग्रन्थि-भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच आनंद की झाँकी दिखलाने लगता है। प्राण के यहाँ प्रवेश होने से ही साधक को प्रत्याहार की प्राप्ति हुआ करती है। जिसके तीसरे दर्जे पर पूर्ण समाधि मिला करती है। प्रत्याहार पाँच-सात मिनट के कुम्भक के बीच में हुआ करता है। इसके आगे धारणा एवं धारणा के ऊपर समाधि है। सावधानी की बात यह है कि जब सौ सवा सौ मात्रा का कुम्भक होने लगे, तब तीनों बन्ध लगाना प्रारम्भ करे; अन्यथा हानि की सम्भावना है।

(घ) कुछ स्थूलिक विशेषताएँ

(१) जितना स्वेद, पसीना एक नवयुवक को सौ डंड-बैठक करने से आता है, उतना ही स्वेद उसको पाँच प्राणायाम से आ जाता है।

(२) डंड-बैठक आसनों से स्थूल शरीर की स्नायु में प्रगति एवं शुद्धि हुआ करती है; परन्तु प्राणायाम से शरीरमात्र के स्थूल, सूक्ष्म स्नायुओं की शुद्धि एवं उनमें प्रगति होने लगती है, जिससे विकृत पदार्थ स्वेद द्वारा बाहर आता है। आरोग्यता

का विकास होकर सौंदर्य और कान्ति का चिह्न चेहरे पर छिटकने लगता है।

(३) प्राणायाम से वृद्धावस्था में भी बाल काले, दाँत-दाढ़ वज्र-जैसे मजबूत रहते हैं।

(४) प्राणायाम से बुढ़ापा छूटकर यौवन आने लग जाता है।

(५) प्राणायाम से पाचन-शक्ति कभी मन्द नहीं होती और अन्य अनेक गुणों का स्थूल शरीर में विकास होता है। जो करते हैं, सो जानते हैं। यहाँ विस्तार भय से इतना ही पर्याप्त है।

४—प्राणायाम के भेद

ॐ प्रथम प्राणायाम के दो ही भेद हैं। एक बाहर कुम्भक, दूसरा अन्तर कुम्भक। आगे चलकर इनके तीन भेद हो गये हैं। प्रथम पूरक, दूसरा कुम्भक, तीसरा रेचक। इनके भी आगे चलकर आठ भेद हो गए हैं। जैसे—सूर्यभेदी, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा एवं पिलावनी। यही प्राणायामों के भेद हैं। प्राणायाम और भी कई होते हैं। जैसे—समवृत्ति, केवल कुम्भक आदि जो यथास्थान लिखे जावेंगे।

<u>१—पूरक</u>

ॐ पूरक प्राणायाम का अर्थ प्राण को पूर्ण करना, भरना,

प्रकाशित करना, पवित्र करना आदि होता है। प्राणायाम से प्राण की त्रुटि, अधूरापन, मलीनता आदि दोष दूर होकर प्राण शुद्ध होकर पूर्णता प्राप्त करता है। प्राण को पवित्र करके शरीर में भरना चाहिये। पूरक शब्द का अर्थ हमें सूचना देता है कि प्राण को पूर्ण करो, पूर्ण भरो। इस शब्द का अर्थ यह भी है कि पूर्व, पूर्ण और जल अर्थात् जैसे घट में जल पूर्ण भर जाता है, वैसे ही शरीर में प्राण को पूर्णतया भरना चाहिये। अन्यथा जैसे अधूरा भरा हुआ कुम्भ अधिक छलका करता है और उसके छलकने से उठानेवाले को भी बड़ी कठिनाई हुआ करती है, वैसे ही अधूरे प्राणवाले पुरुष को भी अधिक कठिनाई हुआ करती है। कहाँ तक कहें, इस वायु के अधूरेपन से ही मनुष्य मृत्यु का ग्रास बना करता है। अतः जीने के इच्छुक पुरुषों को वायु को पूर्ण करके शरीर में पूर्ण ही भरना चाहिये। पूरक प्राणायाम से शरीर में शुद्ध, पवित्र, स्वच्छ, 'ऑक्सीजन' वायु पूर्णतया भर जाता है, जिससे पुरुष की आरोग्यता और जीवन की वृद्धि होती है। पूरक दीर्घ एवं बलपूर्वक करना चाहिये। देखना फिर इससे कितना शीघ्र लाभ होता है। पूरक से मनुष्य सब भाँति और सब प्रकार से पूर्ण हो जाता है। पूरक में सबसे अधिक ध्यान में रखने की बात है कि पूरक के साथ शरीर मात्र की स्नायुओं, मज्जा-तन्तुओं में वायु साइकिल एवं मोटर के चक्कों की तरह भरने लग जावे।

२—कुम्भक

ॐ कुम्भक का अर्थ पूर्वोक्त शुद्ध, स्वच्छ, ऑक्सीजन वायु को स्थिर करना होता है अर्थात् जो वायु पूरक से शरीर में पूर्णतया भरी गई है, उसको स्थिर, अचल बनाने का ही नाम कुंभक है। कुम्भक शब्द में "कुम्भ" और "क" दो शब्द हैं। कुम्भ का अर्थ घट और क का अर्थ जल अर्थात् जल से परिपूर्ण घट है। जैसे जल से परिपूर्ण घट में हलचल, छलकनादि बिलकुल नहीं होते, वैसे ही वायु से भरपूर शरीर में कोई हलचल नहीं होती है। सारांश यह कि शरीर को वायु से भरकर अचल, स्थिर करने का नाम ही कुम्भक है। जैसे साइकिल एवं मोटर के चक्कों में वायु भरकर एक दम पेच कस दिया जाता है, वैसे ही हमें पूरक करते ही नासिका बन्द कर देनी चाहिये। जैसे मोटर एवं साइकिल की जीवनगति, कीमत इसके कुम्भक पर ही है, जहाँ इसका कुम्भक बिगड़ता है, फिर उनमें कुछ भी जीवन, मूल्य, गति नहीं रह जाती है, वैसे ही मनुष्य का जीवन उसकी गति, मनुष्यत्व का महत्व कुम्भक पर ही निर्भर है। कुम्भक बिगड़ा तो मनुष्य गया। कुम्भक से संसार में योगियों का महत्व होता है। कुम्भक से ही योगी मृत्युञ्जय बना करते हैं। इस विश्व का जीवन ही कुम्भक है।

३—रेचक

ॐ आप ऊपर पूरक एवं कुम्भक तो समझ ही चुके हैं।

रेचक नाम पूर्वोक्त पूर्ण की हुई वायु को स्थित करके शनैः-शनैः निकालने का है। रेचक शब्द का अर्थ ही धीमापन शनैः-शनैः होता है। अतः स्थित की हुई वायु को बहुत ही धीमी गति से निकालना चाहिये। जैसे महादेव पर रक्खी हुई जलधारा का घट बूँद-बूँद से ही खाली हुआ करता है, वैसे ही महादेव रूप कल्याण पर चढ़ी हुई वायु भी हमें शनैः-शनैः खाली करनी चाहिये। अन्यथा जैसे मोटर एवं साइकिल का वायु के एकदम झटके से रेचक होते ही उसकी शक्ति का नाश हो जाता है, वैसे ही एक दम वायु को रेचक करने से मनुष्य की शक्ति का भी नाश हो जाना संभव है। अतः रेचक पर पूरक से ड्योढ़ा दूना समय लगाना चाहिये। इस पर भस्त्रा में कहे हुए रबड़ की नली और लोहे की स्प्रिङ्ग में उदाहरण देखना चाहिये।

४—विशेष विवेचन

ॐ ऊपर तीन प्राणायाम कहे गये हैं। एक पूरक, दूसरा कुम्भक, तीसरा रेचक। ये तीनों मिल कर एक प्राणायाम होता है। इन तीनों का अर्थ यह हुआ कि (घट) कुम्भ में जल भरो और निकाल दो, जैसे कि घट में मल जम जाने से उसमें बार-बार जल भरते एवं निकालते हैं। जब तक कि वह अतिशय स्वच्छ नहीं होता, तब तक उसे एक जल से धोकर उसमें दूसरा जल डाला करते हैं। इस भाँति से शुद्ध किये घट में जो भी पदार्थ भरे जाते हैं, वे पदार्थ शुद्ध एवं दीर्घायु हुआ करते हैं और

इसके विपरीत अस्वच्छ, मलीन घट में भरा हुआ जल आदि पदार्थ शीघ्र ही दुर्गन्धित होकर फुदफुदा कर उफन जाया करता है। कभी-कभी तो यह उफान घट को विष्फोटक भाप—धूएँ की भाँति फोड़ भी डाला करता है। वैसे ही शरीर-रूप घट को धोने, स्वच्छ करने के लिए, बार-बार शरीर में शुद्ध वायु (ऑक्सीजन) भरना और निकालना चाहिये। शुद्ध, स्वच्छ आक्सीजन वायु के अंदर लेने से अस्वच्छ, विषैला नाईट्रोजन वायु शरीर से बाहर निकलने लगता है। इस भाँति वायु को बारबर शरीर-रूप घट में भरने और निकालने से कुछ ही दिनों में शरीर रूप-घट बिलकुल स्वच्छ एवं पवित्र हो जाता है। और इस पवित्रता के होने से शरीर में स्वच्छ वायु अपने आप ही रुकने लगता है। इस रुकावट की स्थिति का नाम ही कुम्भक प्राणायाम है; अन्यथा अस्वच्छ बिस्फोटक वायु को प्रथम ही शरीर में रोकने से नाना तरह के रोग उत्पन्न होने की सम्भावना है। कभी-कभी तो इस विष्फोटक वायु के प्रकोप से कुष्ट तक भी हो जाया करता है। कितने ही महात्माओं के वायु-प्रकोप से कण्ठ, हृदय, गुदा आदि स्थानों में व्रण हुए देखे गए हैं। अतः प्राणायाम का प्रथमार्थ शरीर एवं वायु को स्वच्छ करना ही है। इस स्वच्छ वायु के प्रभाव से ही प्राण-वायु स्थिर एवं साफ़ हुआ करता है। वायु के स्वच्छ एवं बलिष्ठ होने से ही हमें इहलौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्त होता है; परन्तु उनको यह सूचना बार-बार देनी पड़ती है कि वायु का जो स्वर

चलता हो, उसी नासान्तर से वायु खींच कर नख से शिखा पर्यन्त शरीर में समान रूप से पूर्ण कर देना चाहिये और मन्द स्वर से बहुत धीरे-धीरे निकालना चाहिये। परन्तु याद रहे कि यह वायु शरीर में ऐसे समान रूप से भरें, जैसे मोटर एवं साइकिल के ट्यूब में भरी जाती हैं। अन्यथा जिस भी शरीर के भाग में शुद्ध वायु न पहुँचेगा, उसी शरीर के भाग में विष्फोटक वायु या विकृत पदार्थ जमा रहकर हानि पहुँचाएगा। अतः प्राणायाम करते समय वायु की समानता का लक्ष्य अवश्य रखें।

दूसरी श्रेणी में प्राणायाम का अर्थ यह होता है कि जब पूर्वोक्त प्राणायाम से शरीर एवं प्राणों में से विष्फोटक पदार्थ साफ हो जावेगा, तब पूरक की दृढ़ता बढ़ने लगेगी। तीसरी श्रेणी में रेचक अपने आप ही लीन होने लगेगा। चौथी श्रेणी में अपने आप ही केवल कुम्भक की सिद्धि हो जावेगी। इस चौथी स्थिति में साधक की इच्छा मात्र से ही कुम्भक होने लगता है। प्रथम प्राणायाम में पूरक से दूना ड्योढ़ा रेचक होना चाहिये क्योंकि रेचक ही से विष्फोटक नाइट्रोजन वायु बाहर जाता है। जितना रेचक अधिक होगा, उतना ही विष बाहर जाने लगेगा। दूसरी श्रेणी में रेचक से दूना ड्योढ़ा पूरक होना चाहिये; क्योंकि पूरक से ही शुद्ध, स्वच्छ ऑक्सीजन वायु अन्दर जाया करता है। तीसरी श्रेणी में रेचक का होना अपने आप ही रुक जाता है; क्योंकि इस समय इसका विरोधी पदार्थ ही कोई शरीर में नहीं

रह जाता है, जो इसको वाहर फेंके। चौथी श्रेणी का नाम केवल कुम्भक हो जाता है। यही प्राणायाम का रहस्य है, जो वार-वार विचारणीय है। इन पूर्वोक्त चारों श्रेणियों को समझ कर जो प्राणायाम करेंगे, उन्हें कुछ ही दिनों में अपूर्व लाभ होगा। चाहे कोई कभी भी क्यों न कर देखे। इन चारों भागों के दिखाने का अर्थ ही यह है। यह विशेष विवेचन किया गया है।

५—वहिर कुम्भक

ॐ भगवान् पातञ्जलि के मत में दो ही कुम्भक माने हैं। (१) एक वहिर कुम्भक (२) दूसरा अन्तर कुम्भक। वहिर कुम्भक की विधि यह है कि अन्दर की सब वायु को वाह्य विरेचन कर उसको वाहर ही रोक देने से वहिर कुम्भक हो जाता है। यह कुम्भक यथाशक्ति करना चाहिये।

फल—ॐ अन्दर की प्राण वायु को. वाहर विरेचन करने से अन्दर की विष्फोटक जहरीली नाइट्रोजन वायु का वाहर विरेचन हो जाता है। इसके विरेचन से फेफड़े हलके और शुद्ध हो जाते हैं और वहिर कुम्भक करने से इस प्राण वायु को वाहर का ऑक्सीजन शुद्ध, पवित्र वायु स्वच्छ वना देता है; जिसके शरीर में जाने से हमें आरोग्यता और नवजीवन प्राप्त होता है। ऋग्वेद दस १८-६ में कहा गया है कि वायु में अमृत का खजाना (कोष) है। अतः जहाँ अमृत है, वहाँ रोग एवं मृत्यु का होना निमूल है। अतः इस कुम्भक को सदा प्रेम से करे।

६—अन्तर कुम्भक

ॐ अन्तर कुम्भक वहिर कुम्भक की विपरीत (उलटी) गति का नाम है। अतः जो वायु वहिर कुम्भक से वाहर रोका गया था, उसको शुद्ध ऑक्सीजन वनाकर अन्दर लेने से ही अन्तर कुम्भक होता है। इसमें ध्यान रखने की यह वात है कि जो वायु अन्दर लिया गया है, उसको सव अंग-प्रत्यंगों में भर कर ही कुम्भक करना चाहिये। जैसे फेफड़े, हृदय, उदर आदि में वायु पूर्णतया हो जाने से कुम्भक करना अति लाभप्रद है।

फल—ॐ पूर्वोक्त वहिर कुम्भक से नाइट्रोजन विष्फोटक (विषाक्त) वायु वाहर जाता है और अन्तर कुम्भक से शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र ऑक्सीजन वायु का अन्दर साम्राज्य हो जाता है। इस कुम्भक प्राणायाम की वृद्धि भी वड़े त्वरित वेग से होती है, जो प्राणायाम का मुख्य विषय है। जो साधक शुद्ध वायु को अन्दर भर कुम्भक करते हैं, वे ही योगी वनते हैं और जो अशुद्ध वायु को अन्दर रोकते हैं, वे रोग को ही प्राप्त होते हैं। यह प्राण-विद्या का रहस्य है। इसी रहस्य को जानकर पूर्वज योगी लोग पहाड़ एवं नदियों के संगमों पर रहा करते थे। ऋग्वेद में कहा है कि हे वायु ! तू अपनी औषधि लेता आ। पूर्वोक्त स्थानों से ही वायु औषधि लाया करता है। अतः सड़ियल एवं गन्दे मकानों में कभी प्राणायाम नहीं करना चाहिये। यही रोग एवं योग-भ्रष्टता का मूलमंत्र है।

७—सूर्य भेदी प्रणायाम

ॐ सूर्य भेदी प्राणायाम उसको कहते हैं, जिससे सूर्य-चक्र का भेदन होता है। इसकी विधि यह है किसी भी आसन पर बैठ कर दाँई सूर्य नाड़ी पिङ्गला से सूर्य-चक्र का ध्यान करते हुए प्राण-वायु को पेट में पूर्णतया भरकर नख से शिखा पर्यन्त फैला कर यथाशक्ति कुम्भक करके बाँई नासिका चन्द्र नाड़ी ईड़ा से शनैः-शनैः रेचक करना चाहिये। इन प्राणायामों को २५ से अधिक साधक एक समय में कर सकता है। अशक्त को ५ से ही प्रारम्भ करके क्रम से बढ़ाना लाभप्रद होगा।

फल—ॐ इस प्राणायाम से सूर्य-चक्र मणिपुर सोलर प्लैक्सस (Solar Plexus) नाभी चक्र का भेदन विकास होता है। जिसके विकास होने से जनन-शक्ति की पवित्रता, पुष्टि, प्राण में नवजीवन, क्षुधा की वृद्धि, अस्सी प्रकार का वातज रोगों का नाश हो जाता है। उदर और मस्तिष्क की सब व्याधियाँ इस प्राणायाम से निर्मूल हो जाती हैं। शरीर और मुखारविन्द पर अपूर्व कान्ति छिटकने लगती है। शान्तिपूर्वक और विधि के साथ करने से प्राणायाम भी शीघ्र बढ़ने लगता है। प्राणायाम में शीघ्रता और चंचलता करना साधक को हानिप्रद होता है। अतः इनमें चञ्चलता एवं शीघ्रता को त्याग देना चाहिये।

उज्जायी

ॐ उज्जायी प्राणायाम की विधि यह है कि मुख को बिलकुल

बंद करके दाँई नासिका पिङ्गला नाड़ी से वायु को शनैः-शनैः और बलपूर्वक खींचकर मुखसे रोककर फिर हृदय कण्ठ की वायु को शब्दपूर्वक खींचकर मुख की वायु में मिलाकर कुम्भक करे। कुम्भक अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिये। इस कुम्भक में वायु हृदय से नीचे नहीं जाना चाहिये। कुम्भक पूर्णतया होने पर बाँई नाड़ी ईड़ा से वायु को बिलकुल शनैः-शनैः विरेचन कर देना चाहिये। विरेचन जितना धीरे-धीरे हुआ करता है, उतना ही प्राणायामों का फल अधिक होता है। यह बात सभी प्राणायामों में ध्यान में रखने की है।

फल—ॐ पूर्वोक्त उज्जायी प्राणायाम से कण्ठ, मुख, फेफड़ों की स्वच्छता एवं विकास होता है। इसके अभ्यास से कफ के सब रोग, फेफड़ों की अशक्ति, वीर्य एवं धातुओं के दोष, बात की विकृतता, पेट की मन्दाग्नि, प्लीहा, जलोदरादि सर्व रोग, बुढ़ापा एवं चमड़ी का ढीलापन आदि सब का नाश होकर क्षुधा-वृद्धि आदि अनेक गुणसाधक शरीर में प्रकट होते हैं। यह प्राणायाम तैराक, छाती पर पत्थर तोड़नेवाले, गर्दन का विकास व संकोच करनेवाले साधकों को अवश्य करना चाहिये। इससे अपूर्व एवं शीघ्र ही लाभ होगा।

९—सीत्कारी

ॐ सीत्कारी प्राणायाम की विधि यह है कि मुख में दोनों दाँतों की पंक्ति एवं ओष्ठों के मध्य में जिह्वा का बिलकुल अग्र

भाग दबाकर कुण्डलनी-शक्ति के मुख का ध्यान करता हुआ जिह्वा के छिद्र से वायु को सीत्कारपूर्वक पूरक करके फिर दोनों नासारन्ध्रों से शनैः-शनैः रेचक कर देवे। यद्यपि इस प्राणायाम में कुम्भक नहीं कहा है, तथापि यथाशक्ति कुम्भक से अधिक लाभ होता है।

फल—ॐ इस प्राणायाम के बार-बार करते रहने से सम यौवन, सौंदर्य की वृद्धि, बल, शक्ति, साहस एवं धैर्य का विकास होकर हर एक कार्य में सफलता मिला करती है। इसके अभ्यासी साधक योगियों में सिद्ध, वीरों में इन्द्र, रूपवानों में कामदेव हो जाता है। यह प्राणायाम पैत्तिज रोगों का मटियामेट करनेवाला एक ही अनुभव सिद्ध प्रयोग है, जिसको अधिक तृषा में चार-पाँच बार करने से ही हृदय ठंडा होने लगता है। चाहे कोई कर देखे।

१०—शीतली

ॐ शीतली प्राणायाम की विधि यह है कि जिह्वा को काक वा शुक पत्ती की चोंच के सदृश बनाकर पूर्वोक्त कुण्डलनी-शक्ति के मुख का ध्यान करते हुये जिह्वा को दोनों ओष्ठों के बाहर कर के शनैः-शनैः वायु को उदरादि अवयवों में पूर्ण करके सूर्यभेदी प्राणायाम के सदृश कुम्भक कर बहुत शनैः-शनैः दोनों नासिकाओं से विरेचन कर दो।

फल—ॐ गुल्म पिल्हादि, उदर रोग, क्षुधा, पिपासादि सर्व विकार, ज्वर पित्तादि सर्व व्याधि, सर्प-विच्छू आदि के सर्व विष

शीतली कुम्भक प्राणायाम से तत्त्तण नाश हो जाते हैं। पूर्वोक्त दोनों प्राणायामों में त्तयी (थाइसिस Phthisis) राजयक्ष्मा आदि सर्व रोगों को (निर्मूल) नाश करने का अपूर्व गुण है, जो आगे त्तयी-निवारक रोग में दिखाया जावेगा।

भस्त्रिका

भस्त्रिका का अर्थ

ॐ भस्त्रिका नाम लोहार की फूँकनी, धमनी, धौंकनी का है। जिस तरह से लुहार की धौंकनी चला करती है, उसी तरह से भस्त्रिका प्राणायाम चला करता है। भस्त्रिका के सदृश होने से ही इसको भस्त्रिका प्राणायाम कहते हैं।

(अ) भस्त्रिका की विधि—

ॐ भस्त्रिका प्राणायाम की विधि तीन हैं। एक दाँई नाड़ी पिङ्गला से पूरक करके बाँई नाड़ी ईड़ा से विरेचन करना। दूसरी बाँई नाड़ी से पूरक करके पिंगला से रेचक करना। तीसरी दोनों से पूरक रेचक करना।

१—ॐ अब आप पद्मासन लगाकर शरीर को सम ॐ सूत्र में करके सूर्य स्वर दाँयें नासारन्ध्र से ऐसे शब्द सहित बलपूर्वक पूरक करो जिसका स्पर्श हृदय एवं नाभी कमल तक होने लगे। इस पूरक को पूर्णतया होने पर बाँई नासिका से रेचक करे,

जिसका स्पर्श हृदय, कण्ठ, मस्तक तक मालूम होने लगे। ये दोनों मिलाकर एक प्राणायाम होते हैं। यह करके फिर एक दो कुम्भक करने चाहिये। यह ही प्रथम भस्त्रिका है।

२—दूसरा प्राणायाम बिलकुल इससे विपरीत है। बाँई नासिका से होता है। विधि पूर्वोक्त ही है। यह दो भेद वायु के नासिका में वहने पर ही होता है; अर्थात् जिस नासिका से वायु वहता हो, उसीसे प्राणायाम करना चाहिये।

३—तीसरी भस्त्रिका वही है जो दौड़ या परिश्रम के समय हो जाया करती है। भेद केवल इतना ही है कि यह लाचारी से होने से छोटी और दम घुटसी हो जाती है। और जो जानकर विधि से की जाती है, वह दीर्घ और प्रकाश को आनन्द देने वाली होती है। अर्थात् प्रथम से श्वाँस घुटता है और दूसरी से जुटता है। यही भस्त्रिका की विधि है।

(आ) साधक और भस्त्रिका।

ॐ जिस भस्त्रिका प्राणायाम की विधि ऊपर पढ़ चुके हैं, उस भस्त्रिका करने के पूर्व आप किसी लुहार के यहाँ जाकर उसकी धौंकनी की गति को देख आवें कि वह कितनी वस्तु के लिए किस तरह चलाई जाती है। फिर जिस श्रेणी में या जिस वस्तु के बराबर आप हो उसी गति से भस्त्रिका करने लगें। जब धौंकनी के आगे हलकी और कमजोर वस्तु हुआ करती है, तब लुहार इसको ह्रस्व और अतिशीघ्र पोली और थोड़े

से दबाव से चलाया करता है। यही भस्त्रिका की गति बिलकुल कमजोर अशक्त साधकों के लिए है। इससे शनैः-शनैः शुद्ध वायु के अन्तर स्पर्श से फेंफड़े, उदर, शुद्ध होकर वायु आकर्षण, धारण, विरेचन की शक्ति बढ़ने लगेगी। जब लुहार की भट्टी में कोई उससे भारी वस्तु होती है, तब वह धौंकनी को मध्यम गति से वेग सहित अधिक दबाव से चलाया करता है। यह गति मध्यम साधक के लिए उपयोगी है। इससे फेफड़ों में अपूर्व शक्ति आया करती है। तीसरी जब लुहार की भट्टी में बड़ी भारी वस्तु होती है, तब वह धमनी को पूर्णतया खोलकर पूर्ण दबाव के साथ पूर्णतया ही शनैः-शनैः बन्द किया करता है। यह गति अति बलिष्ठ, शक्तिशाली साधकों के लिए उपयोगी अमृतमय है। इस भस्त्रिका से शरीर की स्नायु मज्जा तन्तु के सिकाओं का ऐसे शनैः-शनैः विकास खिचाव तनाव होना चाहिये; जैसे एक पहलवान रबड़ की नली को, लोहे की स्प्रिंग को, शनैः-शनैः बढ़ाया करता है। जैसे पूर्वोक्त रबड़ या स्प्रिंग को बढ़ाने की अपेक्षा घटाने में अधिक समय एवं बल की आवश्यकता है, वैसे ही पूरक की अपेक्षा रेचक में ड्योढ़ा दूना समय एवं बल लगाना चाहिये। इस विधि के पूर्णतया होने से साधक में अपूर्व शक्ति का विकास होने लगता है। इस विधि के आगे डम्बलस् स्प्रिङ्ग, रबड़ आदि व्यायाम कुछ भी नहीं हैं। चौथी विधि बिलकुल अशक्त, क्षयी, (थाइसिस) वालों के लिए बड़ी उपयोगी है। किसी एकान्त

प्राकृतिक शुद्ध जंगल में बैठकर या खड़े होकर अपनी शक्ति के अनुसार दोनों नासारन्ध्रों से ५, ७ भस्त्रिका बिलकुल शनैः-शनैः की जायँ तो २५, ३० दिन में ही आपको क्षय में अपूर्व एवं विलक्षण लाभ होगा। दो तीन मास में तो आपके क्षयी के असाध्य कृमी भी मर जावेंगे और आपके शरीर पर आरोग्यता का पूर्ण-तया प्रकाश होने लग जावेगा। परन्तु प्रथम अभ्यास बिलकुल ही बल लगाये बिना करना चाहिये। फिर क्रमशः फेफड़ों की शक्ति बढ़ने के अनुसार ही भस्त्रिका का बल भी बढ़ाना चाहिये।

(६) भस्त्रिका और कुम्भक

ॐ भस्त्रिका में कुम्भक नहीं हुआ करता है। कुम्भक तो भस्त्रिका के अन्त में श्रम एवं सुष्मणा के होने पर ही करना चाहिये अर्थात जब भस्त्रिका करते-करते शरीर में श्रम और नासि-काओं में सुष्मणा हो जावे, तब ही एक-दो कुम्भक कर देने चाहिये। श्रम एवं सुष्मणा के हुए बिना कुम्भक होता ही नहीं है; होवे भी तो उसमें आनन्द का अभाव ही रहता है। श्रम एवं सुष्मणा के एक साथ होने से कुम्भक की वृद्धि और आनन्द की प्राप्ति बहुत शीघ्र हुआ करती है। श्रम एवं सुष्मणा के एक साथ लाने के लिए कम-से-कम २५ भस्त्रिका एक साथ करने की आव-श्यकता है। इतने में सुष्मणा अपने आप हो जावेगी। सुष्मणा से कुम्भक अनायास ही होने लगता है। क्योंकि इन दोनों का अन्योन्य संबंध है।

(ई) भस्त्रिका की पूर्णता

ॐ भस्त्रिका की पूर्णता यह है कि जब वायु शिखा से गुदा पर्यन्त सीधी स्पर्श करने लगे और उसके स्पर्श में कोई रुकावट, विच्छेद न पड़े; तब समझना चाहिये कि अब भस्त्रिका ठीक पूर्णता को प्राप्त होने लगी है। किसी-किसी साधक को तो भस्त्रिका में यहाँ तक सफलता हो जाती है कि उसको भस्त्रिका के साथ अश्वी मुद्रा भी होने लगती है। अर्थात् भस्त्रिका के साथ वायु गुदा से अन्दर-बाहर आने-जाने लगता है। भस्त्रिका का तत्त्वार्थ भी यही है कि जैसे भस्त्रिका लुहार की धमनी ऊपर से वायु पीकर नीचे भट्टी में छोड़ती है, वैसे ही नासिका से वायु पीकर गुदा के नीचे छोड़ना चाहिये। शायद इसको कुछ पाठक असम्भव समझें; परन्तु यह अभ्यास से बिलकुल सत्य, सुगम, सम्भव है। जितनी सुनने एवं पढ़ने में कठिन दीखती है, उतनी ही अभ्यास से सुगम हो जाती है। यह ही प्राण को अपान में होम करना है, या यों कहिये कि प्राण अपान की मैत्री है।

यहाँ प्राण को भृङ्ग और अपान को गोबर का भूण्ड कह सकते हैं। एक दिन प्राणरूप भृङ्ग के साथ अपना रूप गोमय का भूण्ड भी सहस्र दल कमल में जा घुसा था। बस, फिर क्या था, कल्याण रूप शिव के मस्तक रूप ब्रह्मरन्ध्र में जा बैठा। प्रातःकाल शुद्ध आत्मा का विकास होते ही समाधि की गंगा में बह गया। फिर तो प्राण रूप मित्र ने बहुत चाहा कि मित्र को

समाधि की गंगा से निकालकर फिर गुदा रूप गोबर में भेज दे परन्तु अपान ने तो प्राण अपान की गति को रोककर के प्राणायाम परायण होकर समाधि की गंगा में जाकर यह निश्चय कर लिया था कि अब मैं यमपुर रूप गुदा में नहीं जाऊँगा। प्राण रूप भँवरे के बुलाने पर भुण्ड ने यह उत्तर दिया कि 'अरे भँवर मोय जान दे, गंग धारके बीच' यह कहकर आनन्द स्वरूप में लीन हो गया। इसी भस्त्रिका की पूर्णता में पाँचों प्राण एकत्र होते हैं, और पाँचों प्राणों का एकत्र होना ही आनन्द की गति ब्रह्म का धाम है। इसी भस्त्रिका की सिद्धिसे साधक की बजरौली, अमरौली, सहजौली आदि मुद्रा अपने आप ही सिद्ध हो जाती हैं। इसी स्थिति में साधक का वायु पर पूर्णतया अधिकार हुआ करता है। इस अवस्था में साधक को जलवस्ती आदि क्रियाएँ तो बाँयें हाथ का खेल हो जाती हैं। यही भस्त्रिका की पूर्णता है।

(च) भस्त्रिका का फल।

ॐ यद्यपि पूर्वोक्त भस्त्रिका के सिद्ध होने पर कोई सिद्धि साधक से छिपी नहीं रह सकती है, तथापि भस्त्रिका का फल भी कहना चाहिये। भस्त्रिका से साधक प्राणों को विजय करके उन पर अपना अधिकार जमा लेता है। उसकी कुण्डली-शक्ति जागृत होकर ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग को छोड़ देती है; जिससे साधक के प्राण अपने आप ही मस्तक में घुसने लगते हैं। भस्त्रिका के सिद्ध होने से साधक के त्रिदोषों का नाश हो जाता है। भस्त्रिका की सफ-

लता से साधक सर्व कुम्भकों से सफलता प्राप्त करता है। कहाँ तक कहें। भस्त्रिका से ब्रह्म-नाड़ी सुष्मणा का बहुत शीघ्र उद्घाटन होता है, जिसके उद्घाटन से प्राण मस्तक—ब्रह्मरंन्ध्र में जा विराजते हैं। भस्त्रिका से ही मेरु सुष्मणा की ब्रह्म ग्रन्थी, विष्णु ग्रन्थी, शिव ग्रंथियों का भेदन होता है। अतः यह प्राणायाम सर्व-श्रेष्ठ, सर्व-गुण-सम्पन्न साधकों को सर्व सिद्धियों का दाता है।

भ्रामरी

ॐ जिस प्राणायाम में पूरक वेग से और भँवरे के शब्द के सदृश शब्द युक्त होता है और जिसमें रेचक, भृङ्ग, भँवरी के सदृश मन्द-मन्द शब्द से युक्त होता है, उसको भ्रामरी प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम में पूरक रेचक की विशेषता है। अतः इसमें पूरक रेचक ही करना चाहिये। जिसमें भी रेचक का महत्त्व अधिक है; क्योंकि इसका नाम ही रेचक के महत्त्व को बता रहा है। इस प्राणायाम के यथार्थ सिद्ध होने से कुम्भक तो अपने आप ही स्वतः सिद्ध हो जाता है। इसके यथार्थ विधि पूर्वक होने से जो लीला साधक को भासने लगती है, वह बड़ी आनन्ददायिनी अकथनीय लीला है।

फल—ॐ इस भ्रामरी प्राणायाम से वीर्य शुद्ध होकर ऊर्ध्व-गामी होने लगता है। इस प्राणायाम से रक्त एवं मज्जा-तन्तुएँ भी

शुद्ध हो जाती हैं। साधक के मुखमण्डल पर कान्ति एवं तेज छिटकने लगता है। इसके अभ्यासी साधक में अनन्त शक्तियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। इससे साधक के शब्द में भ्रमरी के शब्द-सी माधुरी एवं रसिकता आने लगती है।

मूर्छा

ॐ इस प्राणायाम में पूरक करके अपनी शक्ति के अनुसार कुम्भक रोककर अन्त में रेचक करते समय दृढ़ता से जालन्धर बन्ध लगाकर रेचक करना चाहिये। ॐ इस प्राणायाम का नाम मूर्छा प्राणायाम है; क्योंकि इसके अभ्यास से मन को मूर्छा, निर्विकल्पता, शून्यता प्राप्त होती है। मन को मूर्छा में लाना ही योग में सफलता प्राप्त करना है। मन को निर्विषय बनाना ही ध्यान कहा जाता है।

फल—ॐ ऊपर कहा है कि इस प्राणायाम से मन को मूर्छा आ जाती है और मन के मूर्छित होने से ही योगी आनन्द के धाम में रमण किया करता है। यही सब योगशास्त्रों का सिद्धान्त है। अतः इस प्राणायाम से जितना भी मन मूर्छा में आने लगता है, उतना ही शरीर हलका होता है और आनन्द से रोमांच होने लगते हैं। शरीर का हलका होना और रोमांच युक्त होना ही आरोग्य एवं स्वास्थ्य का लक्षण है। इन दोनों के प्रकट होने में ही शरीर आरोग्यता एवं आनन्द का भवन बन जाता है। और सब सिद्धियों को पाता है।

प्लाविनी

ॐ इस प्राणायाम की विधि यह है कि सब शरीरमात्र की वायु को उदर (पेट) में भरकर पेट को चारों तरफ से मसक या रबड़ के गोले के सदृश फुला देना चाहिये। परन्तु इसमें ध्यान रखने की बात यह है कि जब उदर (पेट) में वायु भर-पूर हो, तब अन्य किसी शरीर के अंग-प्रत्यंग में वायु न रहना चाहिये। ऐसा होने से ही प्लाविनी प्राणायाम सिद्ध होता है।

फल—ॐ इस प्राणायाम से साधक का प्राण-वायु पर पूर्णतया अधिकार तो हो ही जाता है; साथ ही उदर (पेट) के सब प्रकार के रोगों का नाश होकर पेट रेशम के समान कोमल होने से आरोग्यता का विकास होता है। कब्ज, कोष्ठवद्धता तो जड़मूल से ही मिट जाती है, जिसको सर्व रोगों की जननी कहते हैं। अपानवायु की शुद्धि, मल-मूत्र का निर्विघ्न त्याग होना, पाचनशक्ति की वृद्धि, वीर्य एवं रक्त की शुद्धि आदि अनेक गुण साधक में इस प्राणायाम से प्रकट होते हैं। इस प्राणायाम की सबसे अधिक विशेषता यह है कि इसका अभ्यासी साधक जल में मेंढ़क की तरह तैरना, बैठना, चलना आदि सुगमता से कर सकता है। कहाँ तक कहें, इसका साधक जल-विद्या का आचार्य वरुण हो जाता है। जितने तैरने इस प्राणायाम से अनुभव किये गये हैं, वे स्वतन्त्र ही प्रकाशित किये जायँगे।

समवृत्ति प्राणायाम

ॐ समवृत्ति प्राणायाम उसको कहते हैं जिसमें पूरक कुम्भक, रेचक, समान वृत्ति में होता है और जिसमें श्रम एवं शब्द नाम मात्र को भी न हों। इतना सम होने पर भी वायु पूर्णतया उदर में भरकर फेफड़ों के नीचे के भाग में प्रवेश करके कण्ठ के पास वाले फेफड़ों में आना चाहिये। वैसे ही कुम्भक रेचक भी बिलकुल समान बेमालूम होना चाहिये। यह प्राणायाम अशक्त साधकों के लिये अति उपयोगी है।

फल—इस प्राणायाम से सर्व रोग नाश होकर गई हुई शक्ति का पुनः आगमन होने लगता है। कहाँ तक कहें, बद्धपद्मासन लगाकर इसको करने से तो क्षयी के कृमि तक नाश को प्राप्त होकर मनुष्य पुनः संसार के भोगों का आनन्द लेने लगता है। परन्तु इसमें शर्त यह है कि प्राणायाम करते समय शब्द अपना कान तक भी न सुन सके और फेफड़ों को जरा-सा भी परिश्रम न होने पावे; तब ही उसका पूर्वोक्त लाभ होगा। अन्यथा फेफड़ों में अधिक वायु रोकने से हानि की भी संभावना है।

प्राकृतिक प्राणायाम

ॐ प्राकृतिक प्राणायाम सीखने के लिए आपको कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। इसकी शिक्षा, दीक्षा, मन्त्र, मन्त्रणा आप हर एक सोये हुए प्राणी से ले सकते हैं। इसकी दीक्षा

इतनी ही मात्र लेनी है कि सोते समय प्राण के प्राण अन्दर जाकर उदरादि सब स्नायुओं का विकास करते हैं और वैसे ही बाहर आते समय संकोच करते हैं। यही प्राकृतिक प्राणायाम है और इसी प्राणायाम पर विश्व का जीवन चक्र चल रहा है। इसके विपरीत होना ही जीवन चक्र का टूट जाना है। इस प्राकृतिक प्राणायाम का पूर्णयता समझ लेना ही मात्र प्राणायामों की कुञ्जी है। वह यह है कि पूरक करते समय उदरादि को विकास देकर कुम्भक में शान्त बनाकर रेचक में संकुचित करना चाहिये। यही जीवन का सुरक्षित रखना है; अन्यथा इसके विपरीत करने से वही होगा जो जल के विपरीत रोकने से होता है। जब कोई इञ्जीनियर जल को विपरीत चढ़ाना चाहता है, तब वह प्रथम एक महान ह्रद बनाकर उसमें जल के वेग को शान्त बनाकर फिर एक यन्त्र से ऊपर चढ़ाना आरम्भ करता है; वैसे हीं प्रथम साधक को अपने उदर को अपने ह्रद बनाकर प्रथम उसमें प्राण के वेग को शान्त कर फिर सुष्मणा के यंत्र में शनैः-शनैः ऊपर चढ़ाने का अभ्यास करना चाहिये। पेट में वायु को पूर्ण किये बिना सुष्मणा का मार्ग खुलना असंभव से भी असंभव है। और सुष्मणा के खुले बिना वायु को हठपूर्वक रोकना अपनी मृत्यु को आप ही बुलाना ही है। ऐसे ही बेसमझ-साधकों द्वारा प्राणायाम कलंकित किया गया है। इन्हीं दुराग्राही साधकों ने अपने अनुभव नवीन लिखित वाणियों में कहकर जनता को योग से भयभीत एवं विमुख

कर दिया है, जैसे—"देखा देखी साधे योग, छीजे काया बाढ़े रोग।" ॐ सच कहता है कि भारत के बच्चे-बच्ची देखा-देखी ही योग जानते थे, जैसे कि माता की देखा-देखी बच्ची रसोई आदि में प्रवीण हो जाती है। योग तो भारतीयों का ऐसा ही घरू धन्धा था जैसे कि आज कल विषय-वासना हो गई है। क्या काम-कला में कुशल होने के लिये बच्चे-बच्ची किसी विद्यालय में थोड़े हो जाते हैं! इनके तो घर-घर ही विश्वविद्यालय और माता-पिता ही अध्यापक एवं आचार्य होते हैं। यही बात पहले योग के लिये सत्य थी, जिससे भारत को सब विश्व का गुरुत्त्व मिला था। क्या कभी ॐ फिर भी ऐसा दिन आवेगा?

केवल कुम्भक

ॐ केवल कुम्भक उसको कहते हैं, जिसमें साधक, पूरक एवं रेचक बिना ही कुम्भक करने लगता है। इसकी विधि यह है कि प्राण उठता हुआ "हं" और लौटता हुआ "स" बोला करता है। इन दो शब्दों को अजपा गायत्री कहते हैं। अजपा उसका नाम है, जिसकी कोई इन्द्रिय भावना से भी जप नहीं कर सकती। जो किसी भी इन्द्रिय-भावना द्वारा जपा जाता है, वह अजपा नहीं हो सकता। अतः इसको निरिन्द्रिय एवं भावनातीत होकर केवल आनन्दी वृत्ति से इस आनन्द स्वरूप में लीन हो जाना ही केवल कुम्भक और अजपा जप है। ॐ जप दो ही तरह से होता है। एक जिसमें इन्द्रियाँ और भावना मंत्र

के चक्र पर चढ़ जाती हैं, जिसमें इनका कोई सत्त्व अस्तित्त्व नहीं रह जाता। दूसरा जप वह है जिसमें इन्द्रियाँ एवं भावना के चक्र पर मन्त्र चढ़ जाता है। इसमें मंत्र का कोई भी अस्तित्त्व नहीं रह जाता है। यही जप बोद्धइष्टों के चक्र का ही जप है। अतः केवल कुम्भक के साधकों को मंत्र के चक्र में इन्द्रियों एवं भावनाओं को चढ़ा देना चाहिये। फिर सभी इन्द्रियाँ वही कहने लगेंगी, जो कुछ मंत्र कहता है कि मैं आनन्द-स्वरूप-ब्रह्म हूँ। मैं दुखातीत सुख आत्मा हूँ; मैं शक्ति सहित शिव हूँ। यही तो मंत्र रूप पारस को इन्द्रिय एवं भावना रूप लोहे से स्पर्श कराना है। इसके स्पर्श होते ही जीव शिव हो जाता है। यही अजपा जप है। व्यायाम की धारणा से अजपा का अर्थ यह होता है कि "स" शक्ति और "हं" मैं अर्थात् मैं शक्ति बल ताकत का समूह, केन्द्र, भण्डार, कोष, खजाना हूँ। प्रिय ॐ आप व्यायाम की भावना से अपने-अपने सब भाव और इन्द्रिय समूह को अजपा के मंत्र चक्र पर चढ़ा दीजिये तो देखिये फिर थोड़े ही दिनों में शक्ति बल के कोष बनते हैं या नहीं। योगशास्त्र और तन्त्र यही कहता है कि प्राण आपके अवयव अंग-प्रत्यंग रोम-रोम में सूचित करता है कि मैं शक्ति हूँ, बल हूँ, ताकत हूँ, शिव हूँ। तुझे शक्ति एवं शिव बनाने आया हूँ; पर यह करे क्या ? आपने तो इसकी प्राकृतिक कूक को कभी सुना ही नहीं है। आप तो पहरेदार के कूकते-कूकते भी अपना सर्वस्व लुटवा रहे हैं। आप

जागे ही नहीं तो पहरेदार क्या कर सकता है ? अस्तु, कुछ भी क्यों न कहो, इन्द्रिय एवं भावनातीत होकर प्राण के मूल शब्द से जाना ही केवल कुम्भक है। यहाँ पर ही मृत्यु अमर होती है। यह ही अमरभूमि की अमरशिला है। यहाँ आनन्द-स्वरूप का आनन्द असीम है। ॐ आइये, एक बार यहाँ का भी आनन्दामृत पान कीजिये। यही आपका जन्म-सिद्ध अधिकार है, जिसको भूलकर आप स्वयं मृत्यु से मिलने जा रहे हैं।

प्राणों को दीर्घ बनाने का प्राणायाम

ॐ अब आप किसी शुद्ध पवित्र सुगन्धित खुले एकान्त कमरे में जाकर समसूत्र में खड़े होकर नासाग्र पर दृष्टि जमाकर जितनी लम्बी आपकी बाहु हो, उतनी ही दूर पर अपने सामने की दीवार से पाँव जमाकर, अपने दोनों हाथों की हथेलियाँ उसपर रखकर, दीवार को पीछे को ओर दबाते हुए शरीर मात्र की स्नायुओं को तनतनाइये और दीर्घ एवं उच्च स्वर से ॐ का उच्चारण करें। इस उच्चारण के साथ पेट को मेरू-दण्ड की ओर खींचते जाइये और छाती को सामने की ओर फुलाते जाइये। या यों कहिये कि जैसे-जैसे ॐ दीर्घ एवं उच्च होता जाय, वैसे-वैसे ही उदर अन्दर और छाती बाहर आती जावे। इस ॐ के उच्चारण को आप जितना-जितना दीर्घ बनाते जावेंगे, उतना ही उतना आपका प्राण दीर्घ होने लगेगा और जितनी-जितनी आपकी स्नायुओं में तनतनाहट उत्पन्न होती जावेगी, उतनी ही उतनी

आपकी स्नायुओं में ॐ की ध्वनि गूँजने लगेगी जो आपके मन एवं इंद्रियों को अन्तरलोक में ले छोड़ेगी। ॐ आप इस उच्चारण को तीन मिनट का दीर्घ बनाकर देखें तो आपको यह किस आनन्दलोक में पहुँचाता है।

फल—ॐ इस प्राणायाम से प्राण दीर्घ, बलिष्ठ, शक्तिशाली होता है। दिन-प्रति-दिन प्राण स्थिति, आनन्द की भूमि को पाने लगता है। जो मेरु-दण्ड जीवन का मूल केन्द्र है, वह शुद्ध, बलिष्ठ और सीधा हो जाता है। सूर्य-चक्र मणिपुर प्लेक्सस का विकास हो कर दिव्य जीवन एवं दिव्य आकर्षण की प्राप्ति होने लगती है। आपके शरीरमात्र की स्नायु शुद्ध, पवित्र होकर आरोग्यता प्राप्त करेगी। आपके रक्त में नई कान्ति उत्पन्न होने लगेगी। कहाँ तक कहें, आपके उच्चारण बन्द करने पर भी आपकी स्नायुओं में ॐ का नादानुसंधान होता रहेगा; जिन की मधुरता एवं रसिकता से मन एवं इन्द्रियों को अन्तरमुखता प्राप्त होने लगेगी। जिनके अंतर मुख होने से ही आपको निर्विकल्प भूमि की प्राप्ति होगी। इस अभ्यास के कुछ ही दिन होने से आपका केवल कुम्भक नादानु-संधान होने लगेगा, जो योगशास्त्र का मुख्य साधन है। ॐ सब ही आचार्यों का कथन है और ओ३म् का अनुभव है कि इस ॐ के दीर्घ उच्चारण से प्राण ऊपर मस्तक की ओर जाने लगते हैं। ॐ आप इसको बिना ही विश्वास केवल छः मास तक कर देखें; आपको क्या आनन्द होने लगता है। यह प्राणायाम

आपके दोनों लोक के आनन्द को बढ़ाने का बहुत ही सुन्दर और उत्तम साधन है।

आनन्दात्मक ध्वनि

ॐ इसकी विधि यह है कि आप किसी स्वच्छ पवित्र प्राकृतिक जंगल में तीन सुरीले नवयुवकों को त्रिकोण यन्त्र में खड़ा करके पूर्वोक्त रीति से ही ॐ का उच्चारण कराकर देखें आपको क्या आनन्द प्राप्त होता है। इससे आपके समीप में खड़े हुए साधक भी आनन्द की लहर में झूमने लगेंगे; परन्तु ध्यान में रखने की बात यह है कि उच्चारक और श्रोता एकाग्रता से काम लेवें अर्थात् उच्चारक तो उच्चारण में ही एकाग्र हो जावे और श्रोता सुनने में ही दत्तचित्त हो; अन्यथा आनन्द में न्यूनाधिकता होने की संभावना हो सकती है। मन को वश में करने का यह बड़ा ही उत्तम साधन है।

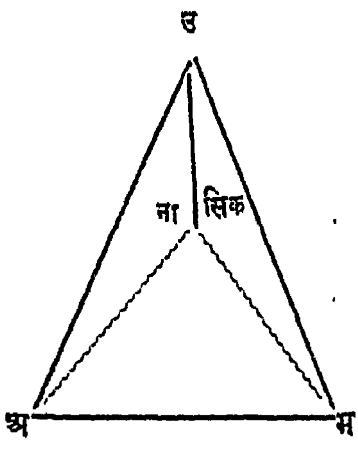

ध्वन्यात्मक प्राणायाम

ॐ आप जहाँ-तहाँ शुद्ध पवित्र जंगल में या मकान में सम-सूत्र में बैठकर या खड़े होकर एकाग्रता-पूर्वक पूर्ववत् दीर्घ एवं उच्चस्वर से ॐ का उच्चारण किया करें; परन्तु इस उच्चारण के समय मन की वृत्तियों को शरीर के अन्तर कंपनों में ही लगाने की चेष्टा करें, जिससे आपके मन का भी निरोध होता रहेगा, प्राण भी पुष्ट एवं स्थिर हो जावेगा। परन्तु उच्चारण इस रीति से होना चाहिये, जिससे शरीर मात्र तनतनाने लगे। यही इसका मूल मंत्र है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप एक दम फूकने लगें; अपितु इसका अर्थ यह है कि जैसे-जैसे उच्चारण बढ़ता जाय, तैसे-तैसे ही शरीर तनतनाता जाय। इस ध्वनि से शरीर के सब रोम कूप खुल जाते हैं, जिससे साधक के शरीर का विकृत पदार्थ बाहर जाने लगता है। अतः ॐ इसको आरोग्यप्रद ध्वनि भी कहा करता है।

फल—ॐ इस उच्चारण में ॐ को ऐसा अनुभव हुआ है कि जिस समय आप इस ध्वनि को उच्चारण किया करते हैं उस समय आपके बाहर वाले शब्द का श्रोत के बाहर के परदे पर ही आ-घात पड़ा करता है, जिससे आपके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरा शब्द ॐ के अनुभव में ऐसा आया है जिस-का आघात आपके श्रोत के आन्तरिक परदे पर पड़ता दीखता है। इस शब्द के स्पर्श से मालूम-सा होता है कि मानो यह शब्द

जवड़ों के मूल से ही बनता है। यह शब्द अत्यन्त सूक्ष्म एवं मधुर, रसीला एवं आकर्षक होता है जो कर्ण-कुहर के अन्तरपट पर स्पर्श करके मनुष्य के भावों को कंठ प्रदेश की ओर खींचता है। कंठ-प्रदेश में जाते ही इस शब्द में एक मोहक गुमक उत्पन्न होने लगती है, जिसका प्रभाव मस्तक के तन्तुओं पर भी पड़ा करता है। इस गुमक के साथ ही साथ यदि उच्चारण को और भी दीर्घ बनाते जावें तो उच्चारण के खिंचाव से हृदय पट के तन्तुओं में भी एक शब्द उत्पन्न होने लगता है। वह शब्द कंठ-शब्द को अपनी तरफ खींचकर बाहर से मनुष्य को विमुख-सा बना देता है। अब इस शब्द की मधुरता, मोहकता, आकर्षकता, गुमकता, प्रथम से द्विगुणी हो जाती है। इसी अवस्था को योगशास्त्र में प्रत्याहार कहा जाता है; क्योंकि यहाँ सब वृत्तियों का हरण हो जाता है। यदि साधक का उच्चारण अब भी दीर्घत्त्व करता जावे तो उस उच्चारण के खिंचाव से नाभीचक्र मणीपुर सूर्य, प्लेक्सश सोलर के तन्तुओं में अपने आघात से एक अति गुमकदार कम्पन का शब्द उत्पन्न करता है, जिससे साधक का शरीर कम्पायमान हो जाता है। जो पूर्वोक्त दोनों गुमकों को अपनी ओर खींच कर कीट भृङ्ग-न्याय से अपना ही स्वरूप प्रदान करता है। बस यही गुमक साधक को निर्विषय-पद प्रदान करता है। इसी गुमक के आघात से कुण्डली-शक्ति मेरुदण्ड के मार्ग को छोड़ कर भागती है। इसके विलग होते ही यह प्राणायाम-मय गुमक

मेरुदण्ड के सुष्मणा मार्ग के ज्ञान-तन्तुओं में कम्पन उत्पन्न करता है। इस कम्पन का मस्तक में पहुँचना ही समाधि की प्रारम्भिक स्थिति है। मस्तक तक पहुँचते हुए इन कम्पनों का संस्पर्श ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि, शिवग्रन्थि का भी भेदन करता है। इन तीनों ग्रन्थिरूप त्रिपुरियों को लखन करके ही साधक आनन्द स्वरूप निजानन्द को पाया करता है। इसी मार्ग में साधक को सात लोक और १४ भुवन मिला करते हैं। यही 'ध्वन्यात्मक' प्राणा-याम कहा जाता है। कोई-कोई इसको प्रणव जप भी कहा करते हैं। वस्तुतः यह है भी जप ही। जप नाम उस वस्तु-तत्त्व का होता है, जिससे मनुष्य अपने देह में कम्पन, उत्तेजना उत्पन्न किया करता है। जैसे एक गाली देनेवाला पुरुष अपने शत्रु के हृदय में दुःख के कम्पन उत्पन्न करने के लिए ही गाली देता है, तो उसके गाली रूप मन्त्र की सिद्धि उसे प्रत्यक्ष हो जाती है; क्योंकि वह अपनी देह को पकड़कर गाली छोड़ता है। जैसे एक सौ व्यक्तियों के बीच में बैठे हुए अपने मित्र को बुलाता है तो उसका शब्द, रूप मन्त्र उसमें ही बोलने के कम्पन उत्पन्न किया करता है और वह झट से बोल उठता है। यही मंत्र-सिद्धि का रहस्य है। मंत्र नाम, मंत्र के देह का लक्ष्य भेद करना है न कि मंत्र के शब्द-समूह को जिह्वा पर थैली में कौड़ियों के सदृश हिलाना। व्याकरण से भी पूर्वोक्त अर्थ ही सिद्ध होता है, जैसे कि "मंत्रः गुप्त भाषणे" मंत्र नाम, गुप्त तत्त्व को ही दिखाने का है। उसका लक्ष्य भेद करके

उसके देह में कम्पन उत्पन्न करना ही मन्त्र जप है, जिससे हमें प्रत्यक्ष सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धि के न मिलने से मन्त्र की त्रुटि नहीं है। यह तो उसके जापक की ही है। यदि किसी लक्ष्य-भेदी की गोली लक्ष्य भेद न करे तो वह गोली की गलती नहीं मानी जाती; अपितु उसके सञ्चालक की ही त्रुटि है; क्योंकि वह पूर्णतया लक्ष्य नहीं साध सका। अस्तु; मन्त्रों से सिद्धि प्राप्त न होना यह मन्त्रों की कमी नहीं; वल्कि उसके जापक की ही कमी है; जिससे वह मन्त्र के देह को नहीं पकड़ सका। उदाहरणार्थ गायत्री को ही ले लीजिये। गायत्री का लक्ष्य भेद सूर्य एवं सूर्य-चक्र का भरग तेज है, जो इनके तेज को जाने विना जप करते हैं, वे गायत्री का महत्व और अपना समय बिगाड़ते हैं। गायत्री जप का ध्येय तेज को जागृत करना है; अस्तु। फिर भी "अकरणात् करणं श्रेयः" है।

नाड़ी शोधक प्राणायाम

ॐ जो साधक अपना जीवन प्राणायाम के लिए दे चुका हो उसको ८० प्राणायाम प्रातः और ८० मध्याह्न, वैसे ही ८० सायं, एवं ८० अर्द्ध रात्रि में करने चाहिये। इन ३२० प्राणायामों के नित्य करने से साधक की नाड़ी तीन मास में ही शुद्ध होकर योगतत्त्व में प्रवृत्ति होने लगती है। इसमें कोई सन्देह नहीं, चाहे कोई भी क्यों न कर देखे। ऐसे साधक उत्तम साधक कहे जाते हैं। ॐ दूसरे मध्यम साधक को क्रमशः ४० प्राणायाम चारों

समय करने चाहियें। जो १६० प्राणायाम करता है उसका नाड़ी शोधन लगभग छः-सात मास में हो जाता है। ॐ तीसरे कनिष्ठ साधकों को वीस २०—२० करके चारों समय ८० प्राणायाम करने चाहिये। इनका डेढ़ वर्ष में नाड़ी शोधन अवश्य होगा। अन्य स्वास्थ्यरक्षा के लिये पाँच-पाँच प्राणायाम प्रति दिन प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिये। यदि कोई चारों समय में २० ही प्राणायाम करेगा तो उसकी नाड़ी भी तीन वर्ष में अवश्यमेव शुद्ध हो जावेगी। प्राणायाम के उपासकों को प्राणायाम में व्यग्रता या त्रुटि पड़े विना कभी कोई रोग नहीं हो सकता। ॐ विश्वास और दावे के साथ कहता है कि जो साधक पाँच प्राणायाम ही पथ्य से रहकर एवं नियम पूर्वक विधि समझ कर करता है, उसको कोई रोग छू तक नहीं सकता।

नादानु संधान के लिये

ॐ जिस साधक को प्राणायाम में नदानु संधान करना हो उसको नवीन लिखित विधि से प्राणायाम करना चाहिये। विधि यह है कि आपका प्रथम जिस नासारन्ध्र से प्राण-वायु चल रहा हो, उसीसे २०—२५ भस्त्रिका प्राणायाम, करके दो तीन मिनट विश्राम लेकर एकाग्रता से एक कुम्भक करे। यह प्राणायाम करके फिर २५ भस्त्रिका करे प्रथम कुम्भक वाली नासिका से, दूसरी नासिका से एक कुम्भक करे। इस भाँति एक के पश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा करे। कम से कम

११ कुंम्भक प्राणायाम करे जिसमें ७५ भस्त्रिका होंगी और ११ कुम्भक होंगे। कुम्भक में पूरक अति बलयुक्त और रेचक अति शनैः-शनैः होने चाहिये। इस विधि के नियमबद्ध होने से तीन ही मास में नादानु संधान होने लगेगा, जिसको सुन कर आपका मन एवं इन्द्रियाँ अन्तर मुख होने लगेंगी। जिस अन्तर मुखता के आनन्द से आप आनन्द स्वरूप को प्राप्त हो जावेंगे। यदि उसके साथ मयूर आसन* का अभ्यास भी किया जावे तो नादानु संधान में और भी शीघ्रता होगी। अभ्यास के बढ़ने से प्रथम ही कुम्भक में नादानु संधान का स्पष्टीकरण होने लगेगा। नाद का शब्द प्रथम दायें कान से सुनना चाहिये। कुछ समय में दायें-बायें एक ही बन जावेंगे और कभी-कभी तो यह शब्द उच्चारण के पश्चात् भी आप सुना करेंगे। उस समय आपका मन ध्यान से उठना ही बुरा मानेगा। ॐ यह बड़ा ही अकथनीय आनन्द है। आप इसको एक बेर अवश्य सुनें।

सर्व व्याधि नाशक प्राणायाम

ॐ जो विचक्षण साधक जिह्वा को तालु-मूल में लगाकर प्राण वायु का पान करता है, उसके सब रोग कुछ ही दिनों में नाश हो जाते हैं। तालु-मूल उस स्थान का नाम है, जो तालवे और कण्ठ का मध्य भाग है। यद्यपि इस स्थान पर जिह्वा को जमाकर प्राणवायु का पीना कठिन अवश्य है, परन्तु अभ्यास से सब कुछ

* इसका विशेष हाल 'आसन सिद्धि' नामक पुष्प में है।

हो सकता है। यह प्राणायाम मुख और नासिका दोनों ही मार्गों से हो सकता है। मुख की अपेक्षा नासारन्ध्र से सुगम होता है। इसके साधक को जिह्वा दोहन † आकर्षण अवश्य करना चाहिये, जिससे जिह्वा लम्बी होकर तालु में जाने लगे।

फल—ॐ जितना ही यह प्राणायाम कठिन है, उतना ही इसका फल भी अधिक एवं सत्य है। इसके करने से सब रोगों का क्षय तो होता ही है, इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। किन्तु दमा एवं क्षयी वाले को तो यह संजीवनी ही सिद्ध हुआ है।

(क) कवि बनानेवाला प्राणायाम

ॐ जो साधक कुण्डलनी-शक्ति के मुख का ध्यान करता हुआ अपने राजदन्त के नीचे वाले दाँत से दबाकर उसके छिद्र से प्राण-वायु पान करता है, वह साधक निश्चय छः मास में कवि पुङ्गव हो जाता है। वैसे तो प्राणायाम मात्र ही बुद्धि की काव्य-शक्ति के विकासक होते हैं। परन्तु इस प्राणायाम की विशेषता का ॐ को कुछ भी निजी अनुभव नहीं है। ॐ आशा करता है कि कोई साधक इस पूर्वजों की सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् वाणी का अनुभव लेकर जनता के सन्मुख रख पुण्य एवं यश का भागी होगा। ॐ का विश्वास, दावा एवं श्रद्धा है कि यह कथन सत्य, शिव, सुन्दर है। हमारे पूर्वजों का सम्पूर्ण कथन अनुभूत योग है।

---

† जिह्वा को कपड़े से पकड़ कर गाय के दोहन के समान खींचने को जिह्वा दोहन कहते हैं।

(ख) क्षयी निवारक प्राणायाम

१ ॐ क्षयी नाशार्थ पूर्वोक्त सीतली, सीत्कारी, समवृत्ति तीनों प्राणायाम जो ऊपर कहे हैं, वही हैं; इन्हीं को विधि संयुक्त करने से क्षयी रोग अवश्यमेव नाश हो जाता है। यद्यपि इनकी विधि ऊपर कही गई है, तथापि क्षयी के लिये उसमें कुछ परिवर्त्तन की आवश्यकता है। पूर्वोक्त सब विधि को काम में लेते हुये भी वायु को रस सहित शनैः-शनैः जिसका शब्द अपने कान में भी ध्यान देने से सुनाई न देवे, पीना चाहिये। इस पीई हुई वायु को फेफड़ों में न भर कर सीधा पेट में ही लेजाकर प्रथम नीचे के फेफड़े में वायु का प्रवेश करना चाहिये, जिससे वायु तीनों फेफड़ों में प्रवेश करके नासिका से शनैः-शनैः विरेचन होवे। इस विधि के पूर्णतया होने से वायु तीनों फेफड़ों में से छलनी की तरह धीरे-धीरे छन कर विरेचन होगी, जिसका फल फेफड़ों की स्वच्छता, शुद्धि, पवित्रता एवं जीवन होगा। इस प्राणायाम की पूर्वोक्त विधि के करने से फेफड़ों की दुर्गन्धित वायु और क्षयी के कृमियों का नाश एवं विरेचन हो जाता है। पूर्वोक्त दोनों घातक पदार्थों का नाश होकर फेफड़ों को नया जीवन मिलने लगता है; परन्तु स्मरण रहे, वायु प्रथम नीचे के ही फेफड़ों में प्रवेश करे अन्यथा उदर में फेफड़ों से नीचे को वायु जाने से क्षयी के कृमियों के उदर में जाने से हानि की सम्भावना है। अतएव यह प्राणायाम अति सावधानी से करना चाहिये। यदि ये प्राणायाम गरम एवं

शुष्क वायु में किये जावें तो अति उत्तम है। योग शास्त्र में तो तीन मास में ही क्षयी रोग का नाश होना लिखा है; परन्तु ठीक तरह से प्राणायामों के होने से रोगी को एक-ही दो सप्ताह में आरोग्यता का अनुभव होने लगता है। चाहे कोई कर देखे, प्रयोग अनुभूत है। परन्तु याद रहे कभी बलपूर्वक वायु न पीना चाहिये। बलपूर्वक वायु के पीने से कभी-कभी अच्छे पुरुषों के फेफड़ों में भी व्रण हो जाया करते हैं।

मानसिक भावना

ॐ पूर्वोक्त प्राणायामों को करते समय मन में नवीन लिखित भावनाओं का दृढ़ होना आवश्यक है; मानों पूरक के साथ हमारे फेफड़ों में आरोग्यता; नया जीवन, बल, शक्ति, शुद्ध वायु प्रवेश करती है और कुम्भक में पूर्वोक्त शक्तियाँ मानो अपना पूर्णतया अधिकार हमारे फेफड़ों पर जमा कर रेचक में सब रोग निर्बलतादि विकारों को निकाल देती हैं, अतः अब हम कुछ ही दिनों में आरोग्यता प्राप्त करेंगे। मानसिक भावना निर्बल होने से फल भी कुछ देर में एवं न्यून हुआ करता है। हाँ, होता अवश्यमेव है। साधन में श्रद्धा, विश्वास एवं प्रेम होने से प्रथम कार्य अधूरा हुआ करता है। साधकों को सबसे प्रथम कार्य साधन को पूरा करना है। साधन में पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और भावना करने से ही वह सिद्ध हुआ करता है। भगवान के वाक्यों में, मनुष्य श्रद्धा का ही बना हुआ चित्र है।

(ग) श्वास खाँसी आदि पर

ॐ श्वास खाँसी आदि रोगों की क्रूरता प्राय: सब ही जानते हैं। अतः इनका परिचय देने की अधिक आवश्यकता नहीं है। यहाँ ॐ पाठकों को इनके उपाय ही बताना चाहता है। उपाय यह है:—

कफ मात्र के रोगों के लिए 'उज्ज्याई' प्राणायाम अमृत का कार्य करता है। कफ के सुखाने में 'भस्त्रिका' व 'सूर्य भेदी' बड़े ही लाभप्रद सिद्ध हुए हैं। कफ के निकालने में 'सीतली' 'सीत्कारी' महौषधि का काम करते हैं! वायु के सम्मुख खड़ा होकर 'सीतली' एवं 'सीत्करी' करने से कफ ५-७ मिनट में ही खलक कर निकलने लगता है। एक-दो सप्ताह में ही रोगी को परम शान्ति प्राप्त होजाती है। वलगम वाले के लिए कंठ में 'कुम्भक' करना वड़ा ही लाभप्रद होता है। प्रयोग अनुभूत है। पाठक लाभ उठावें।

(घ) अपस्मार नाशक प्राणायाम।

ॐ आप यह तो जानते ही हैं कि अपस्मार (मिरगी का रोग) विनाशकारी एवं भयानक है। यह मनुष्य को एकदम मिट्टी में मिला देता है। यह रोग मस्तिष्क सम्बन्धी है। अतः इसका अधिक विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए निम्न लिखित साधन बड़े ही उपयोगी सिद्ध होंगे:—

भस्त्रिका प्राणायाम, कपाल भांती, शीर्षासन * जल, सूत्र,

* इसका विशेष वर्णन षटकर्म मुद्रा प्रयोग में मिलेगा।

वातसार, नेति† के करने से यह रोग अवश्य शांत होगा। परंतु बारह मास तक साधन अवश्य होना चाहिये। चाहे लाभ शीघ्र ही क्यों न हो जावे!

(ङ) रक्त विकार या कुष्ट।

ॐ रक्त विकार ही कुष्ट का मूल कारण है, जो रक्त के शुद्ध होने से ही हटना स्वभाव सिद्ध है और उसकी शुद्धि का प्राणायाम से अधिक कोई भी सुन्दर साधन, प्रयोग एवं औषधि नहीं है। प्राणायाम से रक्त का कुछ ही समय में कायाकल्प होकर गंगाजल की सदृश शुद्ध होकर पाप एवं रोगों का नाशक हो जाता है। ॐ आशा करता है कि रक्त-विकार के रोगी भी प्राणायाम से अवश्य आरोग्य लाभ प्राप्त करेंगे अतः यहाँ कुछ प्राणायामों के नाम देता है:—

शीतली, सीत्कारी, भस्त्रिका, सूर्यभेदी, काकी मुद्रा, शीर्षासनादि के सेवन से रोगी अति शीघ्र मुक्ति पा सकता है।

(च) मुख जिह्वा आदि रोगों पर।

कई वार मनुष्यों की जिह्वा पर फफोले होकर व्रण आदि का रूप धारण कर लिया करते हैं, जिनकी क्रूरता से मनुष्य दिन-रात दुःखी रहा करता है। यहाँ तक कि वह खाने-पीने तक को भी तरसने लगता है। यह रोग रसना एवं वाक्येन्द्रिय को ऐसा वन्द कर देता है, जैसे राजनैतिक वक्ताओं को गवर्नमेंट की १४४ धारा

† इसका विशेष हाल आसन सिद्धि नामक पुष्प में है।

रोक लिया करती है। यह रोग आयुर्वेद की दृष्टि से वातज, कफज और पित्तज तीन तरह का होता है। इसकी शांति के लिए डाक्टर एवं वैद्य कई वहुमूल्य औषधियों तक के कुल्ले भी करवाया करते हैं:—जैसे दुग्ध और मधु, और घृत आदि को अन्य औषधियों के साथ प्रयोग में लाया करते हैं। इससे ही इस रोग की क्रूरता का परिचय मिल जाता है कि जिन वस्तुओं को हमारे शास्त्र अमृत की उपमा देते हैं, जिनको देखते ही मनुष्य स्वभाव से ही उनको खाने-पीने की इच्छा करने लगता है, उन्हीं पदार्थों को यह रोग वाहर थूकने को वाध्य करता है। अव पाठक ही कहें, इस दुष्ट रोग के आक्रमण विना कौन अभागा मनुष्य दुग्धादि पदार्थ मुँह में आने के वाद थूकने की इच्छा करेगा। अर्थात् कोई भी नहीं; अस्तु। इस भयंकर रोग की शांति के लिए हम पाठकों को कुछ प्राणायाम वतलाते हैं, जिनके अभ्यास से रोगी को एक ही दिन में शांति मिलेगी। वे प्राणायाम निम्न लिखित हैं:—

पित्त-रोगी के लिए शीतली और सीत्कारी निम्न लिखित विधि से कार्य में लेने से अवश्य लाभ होगा। वह विधि यह है कि कण्ठ को विलकुल वन्द करके जिह्वा के अग्र भाग को दाँतों से दवाकर ओष्ठों को सूत्र मात्र खुला रखते हुये या जिह्वा को काक-चोंच की सदृश वनाकर वायु को पीकर नासिका से निकाल दो। भावार्थ यह है कि वायु को उदर में न जाने देकर

मुँह से पीकर नासिका से निकाल दो। ऐसी पचीस आवृत्ति नित्यावश्यक हैं। यदि ऐसे नहीं कर सके, तो वायु के पेट में जाने से भी कोई विशेष हानि नहीं है। हाँ, लाभ में विलम्ब अवश्य होगा। यदि वायु सक्ष्म और गोलोवतः बनाकर सीधा व्रण पर स्पर्श कराके विरेचन करोगे तो भयंकर से भयंकर रोग भी अति शीघ्र शान्त होगा। यह प्राणायाम कण्ठ एवं हृदय के व्रणों को भी अमृत के समान फल देता है।

वातज और कफज के लिये सूर्यभेदी भस्त्रिका और सूर्यभेदी प्राणायाम करना अत्युत्तम है। विधि यह है कि इसको भी व्रणों से स्पर्श कराके पेट में न जाने देकर नासिका द्वारा बाहर निकालते जाओ। परन्तु आवृत्ति इनकी भी कम से कम २५ कर लेनी चाहिये। प्रयोग अनुभूत है।

वीर्य संशोधक प्राणायाम

ॐ वीर्य-दोष निवारण के प्रथम, वीर्य-दोष के कारणों को समझना आवश्यक है कि यह दोष कैसे और क्यों होता है? वीर्य वस्तु मात्र का जीवन सत्त्व है। इस वीर्य रूपी बीज के बिना संसार के किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति, रक्षा, जीवन नहीं रह सकता। अतः वीर्य ही विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और नाश का कारण भूत है। इसको शास्त्रों में बीजत्व, वीरत्व, ओजस्, बल, तेज, शुक्र, पवित्रता, रेत, कान्ति, बिन्दु, भरग आदि नामों से कहा है। पूर्वोक्त सभी नाम मनुष्य जीवन को दिव्य एवं अलौकिक

शक्ति के सूचक हैं, और वेद के मत से यह दिव्य शक्ति तुम्हारे खाये पदार्थों का ही सार तत्त्व है; जो रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र या वीर्य या ओजस् का रूप बनती है। यह जीवन तत्त्व शरीर में ऐसा रहा करता है, जैसे दूध में घृत, ईख में रस इत्यादि। जैसे दूध एवं गन्ने की कान्ति, तेज का कारण घृत एवं रस होता है, वैसे ही मनुष्य की कान्ति, तेज और जीवन का कारण वीर्य ही है। जैसे रस के सूख जाने से गन्ना, घृत के निकल जाने से दूध निस्सार हो जाता है, वैसे ही वीर्य के निकल या सूख जाने से मनुष्य-जीवन निस्सार हो जाता है। इसी जीवन-तत्त्व-रक्षा के लिये हमें इसकी उत्पत्ति के स्थान को जानना आवश्यक है। इसकी उत्पत्ति का केन्द्र पेट का मध्य भाग मणिपुर, प्लेक्सस सोलर, सूर्य चक्र ही है। इसी चक्र की सहायता से हमारे खाद्य पदार्थों का रस आदि बनना आरम्भ होकर वीर्य, ओज तत्त्व में पहुँचता है। जितना ही इस मणिपुर चक्र के ज्ञान तन्तुओं में अधिक आकर्षक बल उत्पन्न होता है, उतना ही हमारे खाद्य पदार्थों का ओज अधिक एवं शीघ्र बना करता है। जिन पुरुषों का वीर्य रूप और सूर्य चक्र की गैस से ऊपर की ओर उठ कर मस्तक में जाने लगता है, वही पुरुष उर्द्धरेतस् कहे जाते हैं। जिन पुरुषों का ओज वीर्य नाभि से नीचे अण्डकोष की नली में जा पड़ता है, उनको ही अधः रेतस् कहा जाता है। इसी वीर्य को निर्वासित दूषित वीर्य कहा जाता है। ऐसे ही वीर्य

युक्त पुरुषों को वीर्य दोषी पुरुष कहा करते हैं। यह दूषित वीर्य संकल्प मात्र से चलायमान हो जाया करता है। इस वीर्य नली को योग-शास्त्र में प्रमेह नाड़ी कहते हैं। इस नली को वस्ति-क्रिया एवं गणेश-क्रिया करने वाले साधक हाथ से भी स्पर्श करके देख सकते हैं। जिसके दबाते ही वीर्य उपस्थ द्वार के बाहर आ जाता है। इस नली में वीर्य दोष, मूल कारण है। जिन पुरुषों का नली स्थित वीर्य गाढ़ा रहा करता है वह पुरुष अपने को वीर्य दोषी नहीं मानते और जिनका वीर्य जितना ही पतला पड़ता जाता है वह उतना ही अपने को रोगी मानने लग जाते हैं। वस्तुतः देखा जाय तो पूर्वोक्त दोनों श्रेणी के पुरुष वीर्य दोषी हैं। वीर्य दोष से रहित तो वही पुरुष होता है जिसका वीर्य पारद के सदृश मस्तक के मध्य में जा जमता है। मस्तक ही इस शरीर रूपी वृक्ष का मूल है। इसके सिञ्चनार्थ वीर्य ही जल है। इस वीर्य रूपी जल से ही इस शरीर रूपी वृक्ष का सिंचन हुआ करता है। जैसे वृक्ष जड़—मूल के ही सिंचन से बढ़ा करता है, वैसे ही शरीर भी मस्तक रूप मूल के ही सींचने से बढ़ता है। शरीर मात्र की क्रियाएँ मस्तक एवं सुष्मणा के आधार से होती हैं। मस्तक को पेड़ का मूल कह सकते हैं, और सुष्मणा को पेड़ की जीवन त्वचा कह सकते हैं। मूल एवं त्वचा के सुरक्षित होने से ही पेड़ सुरक्षित रह सकता है। यदि वृक्ष के मूल एवं त्वचा को छोड़ कर डाली की शाखा काट भी

दी जावे तो वह फिर भी पीछे फुरू जाती है। परन्तु मूल एवं त्वचा के कटने से फिर वृक्ष कभी हरा नहीं रह सकता। अतः हमें मस्तक एवं सुष्मणा के रक्षार्थ मस्तक में आवश्यक सिंचन करना चाहिये। इसी में हमारा जीवनानन्द भरा हुआ है, अस्तु। मणिपुर चक्र, सूर्य चक्र, प्लेक्सस सोलर आदि उसी चक्र को कहते हैं, जिसमें वीर्य प्रकाश आकर्षण जीवनमय बना करता है। यह एक ही चक्र मस्तक एवं सुष्मणा को वीर्य प्रकाश आकर्षण जीवन प्रदान करता है। इसी चक्र में मनुष्य की जीवन-शक्ति, मनन-शक्ति, विचार-शक्ति आदि शक्तियाँ बना करती हैं। इसी कारण तो निर्वीर्य छात्रों में (युवकों में) जनन-विचार, मनन-शक्ति आदि शक्तियाँ नहीं कही जातीं। यदि आप पूर्वोक्त सब कुछ चाहते हैं तो आज से ही नवीन लिखित साधन करके वीर्य को निर्दोष बना ऊर्ध्वगामी बनावें। इसी में आपका सर्वस्व आनन्द छिपा हुआ है। चाहें तो आप करके देखें।

प्रथम साधन सिद्धासन

ॐ आप अपने बाँयें पग की एड़ी को गुदा से दो अँगुल ऊपर और लिंग से दो अँगुल नीचे प्रमेह नाड़ी के ठीक ऊपर नाभी की ठीक सीध में ऐसा जमावें, जिससे दोनों पाँवों के मणि-बन्ध तक टकने एक दूसरे से मिल जावें। तत्पश्चात् आप अपने बाँये पाँव के अंगुष्ठ व तर्जनी को दाँई पिंडली एवं जंघा के बीच में ले लेवें, इसी तरह दाँएँ पाँव की अंगुष्ठ तर्जनी बाँई

पिंडली एवं जंघा के बीच में जमा कर समसूत्र में नाशाग्र दृष्टि करके ऐसे बैठें जिससे आपके सब शरीर का भाग नीचे की एड़ी पर ही तुल जावे। इस आसन में ठीक-ठीक होने से वही प्रमेह नाड़ी दवा करती है, जिससे वीर्य जमा होने से नाना प्रकार के वीर्य दोष हुआ करते हैं। इस नाड़ी में वही वीर्य जमा होता है जो दूषित हुआ करता है। अतः इसे प्रमेह नाड़ी कहते हैं। इस एक ही आसन के तीन घण्टे बीस मिनट नित्य लगाने से बीस प्रकार के प्रमेह निर्मूल एवं नष्ट हो जाते हैं। दूषित वीर्य के संशोधनार्थ विश्व में इस आसन के सदृश अन्य कोई भी साधन नहीं है। इस आसन के सिद्ध होने से दूषित वीर्य भी ऐसा शुद्ध हो जाता है, जैसे अग्नि में तपाने से सोना शुद्ध हो जाया करता है। पारद एवं वीर्य का जाति स्वभाव एक है। जैसे पारद मैल को त्यागने से स्थिर हो जाता है या गुटिका ही हो जाता है, वैसे ही वीर्य भी इस आसन से शुद्ध होकर संघंटित एवं पुष्ट हो जाता है। यही इस आसन की सिद्धि विशेष है। इस आसन के ठीक-ठीक लगाने से आपकी एड़ी एवं नाड़ी इतनी गरम होगी जितनी कि अग्नि में तपाने से लोहे की सलाक हो जाया करती है। अतः इस अग्नि को सहनीय बनाने के लिए आप अपने नितम्ब के नीचे चार-छः अँगुल चौड़ी और डेढ़ फुट लम्बी कपड़े की कोमल गद्दी रक्खा करें; जिससे एड़ी एवं नाड़ी पर शनैः-शनैः वजन बढ़ा करेगा। कुछ ही दिनों के अभ्यास से यह गद्दी भी छूट जावेगी।

दूसरा साधन प्राणायाम

ॐ आप पूर्वोक्त आसन जमा कर नवीन लिखित प्राणायाम करें। विधि यह है कि जिस नासारन्ध्र से वायु न चलता हो, उस नासारन्ध्र को हाथ के अँगूठे से बंद करके जिससे वायु बह रहा हो, उसी नासारन्ध्र से पूरक कर यथाशक्ति कुम्भक रोक कर दूसरे बंद रन्ध्र से रेचक करदें। कुम्भक यदि कम से कम दो मिनिट का हो, तो अति उत्तम है, अन्यथा यथाशक्ति ही लाभप्रद होता है।

तीसरा साधन मूलबन्ध

ॐ पूर्वोक्त प्राणायाम से पूरक के साथ-ही-साथ आप बड़ी सावधानी से मूलबन्ध भी लगाते जावें। मूलबन्ध गुदा को बिलकुल बन्द करने का नाम है। यह बन्ध आधे के लगभग तो पूर्वोक्त आसन से ही लग जाता है। फिर भी इसकी पूर्णता के लिए पूरक के साथ-ही-साथ गुदा को भी संकोचित करते जाइये। और जब तक कुम्भक रहे, तब तक मूलबन्ध लगा ही रहना चाहिये और रेचक के साथ भी बन्ध रहना चाहिये, जिससे यह ख्याल रहे कि इस गुदा के खिंचाव से वीर्यवाहिनी स्नायुएँ सबल होती जाती हैं।

चौथा साधन जालन्धर बन्ध

ॐ जालन्धर बन्ध उसका नाम है जिसमें कण्ठ-जाल का बन्धन होता है। इस बन्ध को आप कुम्भक के साथ लगावें, पूरक

में नहीं। जहाँ तक हो सके, वहाँ तक रेचक भी इसके लगे हुए ही शनैः-शनैः किया करें। विधि यह है कि पूरक के समाप्त होते ही अपने चिबुक (ठोड़ी) को झुकाकर कण्ठ-कूप में जमा लेना चाहिये। यही जालन्धर बन्ध है। कण्ठ-कूप छाती एवं कण्ठ के बीच के खड्डे को कहते हैं। इस बन्ध से कुम्भक की वृद्धि एवं स्नायुओं में खिंचाव दोनों एक ही साथ होने लगते हैं।

पाँचवाँ साधन स्नायु बलवर्धक क्रिया

ॐ जब आप पूर्वोक्त कुम्भक में दोनों बन्ध उत्तम तरह से लगा लेवें; तब एक कुम्भक में कम-से-कम सात बार अपने गुदा से ऊपर लिंग और मेरु-दण्ड के बीच के भाग को जो नाली के सीध में पड़ता है, इसको आकर्षण-विकर्षण (खींचे और छोड़ें) करें, जैसे लुहार की धमण हुआ करती है। परन्तु ख्याल में यह रखना है कि जब पेट फूले, उस समय छाती की तरफ खिंचाव बिलकुल न होकर सर्व-शक्ति एवं सारी इच्छा मूत्र-नली एवं वीर्य-नलियों के खिंचाव में लगे। खिंचाव भी यहाँ तक होना योग्य है, जिससे मूत्र-नली, वीर्य-नली और गुदा-चक्रों में भी खिंचाव होने लगे। यह खिंचाव, फुलाव एवं सङ्कोच दोनों मनोगतियों में होना चाहिये। जैसे कि फुलाते समय उदर को इतना फुलावे जितना सहा नहीं जाय, वैसे ही सङ्कोचन भी उतना ही हो जिससे पेट बिलकुल रीढ़, मेरु-दण्ड की हड्डी से जा चिपके। ॐ पूर्वोक्त क्रिया से मृतक वीर्य भी जीवित हो जाता है और यह वीर्यवाही स्नायुओं की पोषक,

सूर्यचक्र की प्रकाशक, मन्दाग्नि नाशक, क्षुधावर्धक, दिव्य-जीवन की जननी है। इसी व्यायाम से निर्वासित वीर्य अपनी मणिपुर-चक्र की राजगद्दी पर बैठकर पुनः अपने तेज से इस शरीररूपी राष्ट्र पर अपना प्रकाश डालने लगता है, जिससे मालूम होने लगता है कि इस राष्ट्र का राजा न्यायकारी एवं तेजस्वी है, क्योंकि इस राष्ट्र में तेजस्विता प्रकट होती है। यद्यपि वीर्य देहरूपी राष्ट्र का राष्ट्रपति है; परन्तु राजच्युत होने से राष्ट्रपति भी निर्बल एवं अशक्त हो जाया करता है। तभी तो कहा है कि "स्थानं प्रधानं न बलः प्रधानं" अर्थात् स्थान ही प्रधान होता है, न कि बल प्रधान। यदि आपका वीर्य-स्थान भ्रष्ट हो गया है तो आप आज ही से पूर्वोक्त व्यायामों द्वारा उसे स्थान पर लाने की कोशिश करें। ॐ प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता है कि आप थोड़े ही दिनों में सफलता प्राप्त करेंगे। और आपका वीर्य मणिपुर-चक्र में बैठकर अपना तेजमात्र शरीर में बाँटने लगेगा। पूर्वोक्त व्यायामों से सूर्यचक्र के सम्पूर्ण तन्तुओं में इतना कम्पन होने लगेगा, जिससे वीर्य का तत्त्व स्वरूप गैस बनकर मस्तक में जाने लगेगा। इसी तत्त्व के नाम तेज, प्रकाश, ज्योति, सत, जोहर, आकर्पण जीवन का गैस कह सकते हैं। कहाँ तक कहें, इसी में मनुष्य-जीवन का सर्वस्व है। ॐ पूर्वोक्त व्यायाम से प्रथम आपके उदर के नीचे के भाग का प्रदेश कन्ध के आस-पास की स्नायुओं में कुछ दर्द अवश्य होगा, परन्तु इससे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह दर्द ही सफलता का प्रथम

चिह्न है। जैसे पहलवान की स्नायुएँ नये व्यायाम से प्रथम दुखा करती हैं, परन्तु वह दुखना बल-नाशक नहीं, बल-वर्धक ही होता है, वैसे ही यह दर्द भी आपका बल-वर्धक होगा।

छठाँ साधन प्राणायामों की संख्या

ॐ पूरक, कुम्भक, रेचक को मिलाकर एक प्राणायाम होता है। इस हिसाब से एक आसन में आप कम-से-कम तीन प्राणायाम अवश्य करें। ऐसे ही एक महीने में पाँच तक बढ़ाने की कोशिश करें। इन प्राणायाम की पन्द्रह संख्या होने से आपको सिद्धि प्राप्त अवश्य होगी, परन्तु न्यूनाधिक फल तो पाँच में ही दिखने लगेगी।

सातवाँ साधन सहायक प्रयोग

ॐ आप यदि नवीन लिखित अभ्यास भी पूर्वोक्त साधनों के साथ ही करेंगे तो आपको सिद्धि भी बहुत शीघ्र प्राप्त होगी। साधन विधि यह है कि जब-जब आप लघुशङ्का किया करें, तब-तब अपनी मूत्र-धारा को बारबार बलपूर्वक ऊपर को खींचा करें। यह साधन भी कम-से-कम एक लघुशङ्का में चार बार अवश्य करना चाहिये। इस साधन से भी वीर्य वाहिस्नायु को अपूर्व-शक्ति प्राप्त होती है। विकृत पदार्थ हिलकर बाहर आने लगता है। उसके स्थान पर शुद्ध एवं आरोग्यद पदार्थ अपना अधिकार जमाने लगता है। धैर्य एवं विश्वास से साधन करें; फल अवश्य एवं अमोघ होगा।

उदर संशोधक प्राणायाम

ॐ मनुष्य का उदर ही जीवन और उदर ही मृत्यु है। जिस उदर में परमात्मा का स्वरूप-रूप पाचन-शक्ति रहती है, वही उदर जीवन-रूप होता है। पाचन-शक्ति को भगवान् ने अपना स्वरूप गीता में ही माना है—जैसे कि 'अहं वैश्वा नरो भूत्वा पचाम्यन्नं चतुर्विधं' मैं ही पाचन शक्ति होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ, और जिस उदर में मन्दाग्नि निवास करती है वही उदर मनुष्य के लिए मृत्यु रूप हो जाता है। इसी मृत्यु-रूप मन्दाग्नि को हटा कर भगवान् के स्वरूप-रूप पाचन-शक्ति को उसके स्थान पर स्थापन करने के लिए ॐ यहाँ उदर संशोधक प्राणायाम को बता रहा है। विधि यह है कि आप स्वस्तिक आसन + से बैठ कर अपने दोनों हाथों को घुटनों पर जमाकर तथा वैसे ही जालन्धर बन्ध को लगाकर पूरक-रेचक प्राणायाम करें। पूरक और रेचक की विधि यह है कि पूरक के साथ उदर-वायु को पूर्ण भरकर रबड़ के गेंद के सदृश फूल जावे और वैसे ही रेचक करते समय पेट बिलकुल सिकुड़ कर रीढ़ की हड्डी—बंकनाल से जा लगे। इसके साथ ही गुदा को भी सिंकोड़ते जावें। भावार्थ यह है कि पूरक करते समय उदर को पूर्णतया फुला दो और रेचक में पूर्णतया उड़ियान और मूलबन्ध लगा दो। यहाँ

+ सुखपूर्वक बैठने वाले आसन को स्वस्तिक आसन कहते हैं जो सिद्धासन का ही सुगम भेद है।

तक कि रेचक करते समय अपनी भाव-शक्ति उदर और गुदा के समेटने में ही लगा देना चाहिये। इस प्रकार के प्राणायामों को कम-से-कम २५ से प्रारम्भ कर १०० तक करना आवश्यक है। इसमें कुंभक करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। हाँ, यदि आपको अवकाश हो तो इसके पश्चात् यथाशक्ति त्रिबन्ध आसन से प्राण का संयम अवश्य किया करें।

फल—ॐ इस उदर संशोधक प्राणायाम से गुल्म, प्लीहा, यकृत, जलोदर, वायगोला, कोष्ठबद्धता, मन्दाग्नि आदि उदर के रोग मात्र नाश हो जाते हैं। पाचन शक्ति को तो यह प्राणायाम दावानल-सा ही बना देता है। प्राणायाम क्या है, पूर्वोक्त रोगियों के लिये जीवनामृत है। इस प्राणायाम से वीर्यवाही स्नायु जो नाभि के नीचे भाग में और उपस्थ के आसपास में होती है, उसमें भी अपूर्व बल प्राप्त होता है। इसी तरह से इसका प्रभाव हृदय और फेफड़ों पर भी अपूर्व पड़ता है। प्रयोग अनुभूत है। रोगी लाभ उठावें। इससे आरोग्यों को भी अपूर्व लाभ होता है। सदा पेट मलाई-सा मुलायम रहा करता है। कभी दर्द धरणादि † की शंका तक भी नहीं होती है।

पेट को घटाने और छाती को बढ़ाने वाला प्राणायाम

ॐ मनुष्य का सौन्दर्य, एवं आरोग्य-जीवन मनुष्य के एक

† इसको नाभ टलना, पेंचूटी आदि देश भेद से कहा करते हैं।

ही चिह्न पर निर्भर रहा करता है। वह चिह्न पेट का छोटापन व छाती का बड़ापन ही है। जब मनुष्य का पेट बड़ा व छाती छोटी होने लगती है, उस मनुष्य के पूर्वोक्त सब गुण अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं। मानो उसके पेट में प्रकृति क्षोभित होकर मृत्यु को भरने लग जाती है और छाती से जीवन को घुन के सदृश खाने लग जाती है। अस्तु, पेट का बढ़ना और छाती का घटना ही मृत्यु है। उक्त चिह्नवाले पुरुषों को जीवन एवं मृत्यु तुल्य ही प्रतीत हुआ करता है। इसके लिए ॐ एक प्राणायाम देता है। आशा है, पाठक लाभ प्राप्त करेंगे। आप पूर्वोक्त दोनों प्राणायामों को ऊपर कही रीति से ही किया करें। विधि में कुछ नवीनता है, जो यहाँ बताई जाती है। पूरक करते समय ही उड्डियान बन्ध बलपूर्वक लगाते जावें और छाती को वायु से भरकर बेधड़क अपनी शक्ति पर्यन्त फुलाकर रेचक किया करें। ये प्राणायाम भी १२ से प्रारम्भ करके २०० तक अवश्य बढ़ाने चाहियें। पेट का घटना और छाती का बढ़ना तो दो मास में ही होने लगेगा। ६ या ७ महीनों में तो आपका पेट बिलकुल छोटा और छाती बड़ी होकर आप पूर्ण रूप से सुडौलता को प्राप्त कर लेंगे। कुम्भक की इसमें भी प्रथम आवश्यकता नहीं है; अपितु कमजोर छातीवालों को पूरक, रेचक, कुम्भक बिलकुल शनैः-शनैः और कम शक्ति लगाकर करना चाहिये। अन्यथा लाभ के बदले हानि की भी सम्भावना रहती है।

हृदय वाहु कण्ठ विकासक प्राणायाम*

ॐ जो प्राणायाम आपको अब ॐ बता रहा है, इससे आपके हृदय, वाहु, कण्ठ का विकास एक साथ ही होगा। यह एक ही प्राणायाम संध्या के तीन शब्दों की पूर्ति करता है। (जैसे हृदयं कण्ठवाहुभ्यां यशोबलम्) कि तुम हृदय, कण्ठ, वाहुओं को पुष्टिशाली बनाकर बलशाली वाहुओं से यश प्राप्त करो। प्राणायाम की विधि यह है कि आप किसी भी समयोचित आसन से वैठकर अपने दोनों हाथों की हथेलियों को घुटनों के पास जंघों पर ऐसा जमावें जिसमें आपके दोनों हाथों को अँगुलियाँ अन्दर और हथेलियाँ वाहर की ओर रहें। शरीर को भी समसूत्र में बिलकुल सीधा रखकर नासाग्र दृष्टि से पूरक करते हुए नीचे की ओर न झुककर बिलकुल सामने की ओर जहाँ तक झुक सकें, वहाँ पर कुम्भक पर्यन्त ठहरकर शनैः-शनैः रेचक करते हुए पूर्व स्थिति में आजावें। ऐसे ही दूसरे प्राणायाम में अँगुलियाँ वाहर और हथेलियाँ अन्दर करके प्राणायाम करें। इसी तरह से अपनी शक्ति के अनुसार प्राणायाम की संख्या और काल बढ़ाते जावें। यदि आप हृदय, कण्ठ, वाहु को पुरक करके तनतनाते हुए तन-तनाकर अपना बल मात्र लगाते हुए २५ प्राणायाम नित्य करेंगे, तो आपको १०० दण्ड से अधिक व्यायाम होगा और जो फल

---

*यह प्राणायाम कुम्भक के साथ में करने से अधिक लाभप्रद होगा। जैसे ५ मिनट में १० होने से २ मिनट में ९ होने से अधिक लाभ होगा।

१०० दण्ड से ६ मास में प्राप्त होता है, वह इस प्राणायाम से एक मास में ही होगा, परन्तु प्राणायाम शरीर को नाप-तोलकर आरम्भ करे। इसके साथ ही शुद्ध स्थान और पवित्र वायु की भी आवश्यकता है। ॐ जिस तरह से पूरक करते हुए ऊपर के प्राणायाम में आगे को झुकने को बताया गया है, उसी तरह से बाँएँ हाथ को पीठ पर रखकर पूरक करते हुए दाँएँ हाथ को बाँई जंघा पर जमा कर बल मात्र दाँयें अंग और दाँई भुजा पर देते हुए दाँयें तरफ झुको। ध्यान में रखने की यह बात है कि बाहु और कुक्षि बिलकुल सीधी रहे। ऐसे ही बारी-बारी से दोनों अंगों से करो। थोड़े ही दिनों में शरीर में नई कांति, नया तेज, नया उत्साह, एवं नई स्फूर्ति आने लगेगी। कुछ दिन काम में लाकर देखें, लाभ अपूर्व होगा। इन प्राणायामों को बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री एवं पुरुष सभी कर सकते हैं।

शरीर को सुडौल बनाने वाला प्राणायाम

ॐ सौन्दर्य और स्वास्थ्य का सुडौलता से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना प्रकाश का सूर्य से। जैसे प्रकाश का सूर्य के बिना अस्तित्व ही नहीं होता है, वैसे ही सुडौलता के बिना सौन्दर्य और स्वास्थ्य का भी अस्तित्व मिथ्या है। अतः सौन्दर्य और स्वास्थ्य के उपासकों को शरीर की सुडौलता को सतत प्रयत्न करके भी सुरक्षित रखना चाहिये। शरीर की सुडौलता के

विना मनुष्य का जीवन ही मिथ्या और मृत्यु रूप हो जाता है। सुडौल पुरुष ही विश्व में उन्नति देवी का पाणिग्रहण किया करता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है कि समकाय पुरुष ही तीनों प्रकार की उन्नति को स्थापन किया करता है। गीता में भी सुडौलता को ही योग कहा है। शरीर, ग्रीवा, मस्तक को समत्व में लाना ही सुडौलता है। इसका ही नाम सौन्दर्य और स्वास्थ्य है। अब ॐ सुडौलता को ही सुरक्षित रखने वाले प्राणायाम पाठकों को वताता है। प्राणायाम 'शीतली' और सीत्कारी' हैं। विधि यह है—आप प्रातःकाल सूर्योदय के प्रथम ही किसी शुद्ध वायु युक्त कमरे में या जंगल में समसूत्र में खड़े होकर 'शीतली' और 'सीत्कारी' से ऐसे पूरक करें, जिससे शरीर मात्र में वायु तनतनाता हुआ समान रूप से पूर्ण होकर विरेचन होवे; अर्थात् वायु को नख से शिखा पर्यन्त समान रूप से पूरक करके रेचक करो। इसमें प्रथम कुम्भक की विशेष आवश्यकता नहीं है। यथाशक्ति करने से लाभ ही है। ऐसे ही प्राणायाम नासिका से भी करने चाहिये। प्राणायाम १२ से प्रारम्भ करके १०० तक वढ़ाते जाओ। प्रारम्भ में १२ मुख से और १२ नासिका से करो। ऐसे ही दोनों प्रकार से २०० प्राणायामों तक नित्य करने लगो। 'शीतली' 'सीत्कारी' में मुख से पूरक और नासिका से रेचक होता है; परन्तु नासिका वाले में नासिका से ही पूरक और नासिका से ही रेचक करना चाहिये।

इस विधि से २०० प्राणायाम नित्य करने से छः मास में ही शरीर में समत्व योग का दर्शन होने लगेगा ।

'समत्वं योग उच्यते'

एक देशी प्राणायाम

ॐ उपनिषदों के मत से इस शरीर में बहत्तर करोड़ दस हजार एक सौ एक सूक्ष्म स्थूल नाड़ियाँ हैं; जिन सब पर प्राण और मनका साम्राज्य है। प्राण और मन प्रायः एक ही तत्त्व से बने हुए पदार्थ हैं। इनके भी एक-एक के दो-दो भाग हैं। एक शुद्ध और दूसरा अशुद्ध। इन दोनों के एक तत्त्व से बनने का प्रमाण यह है कि मन के आकर्षण से प्राण का आकर्षण और प्राण के आकर्षण से मन का आकर्षण होने लगता है। इस तत्त्व के पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने से ही साधक को इस प्राणायाम में सफलता प्राप्त हुआ करती है। यद्यपि इस प्रणायाम के सिद्ध होने पर योगशास्त्र में बड़ी-बड़ी सिद्धि प्राप्त होनी लिखी हैं—जैसे कि "सूर्य संयमात् ब्रह्माण्ड ज्ञानम्" "नाभी चक्रे संयमात् काया व्यूह ज्ञानं" सूर्य संयम करने से ब्रह्माण्ड के तत्त्वों का और नाभी चक्र में संयम करने से शरीर व्यूह के तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु यहाँ ॐ इसका उल्लेख सिद्धियों की दृष्टि से नहीं करके आरोग्य की दृष्टि से ही करना चाहता है। ॐ ने ऊपर कहा है कि मन एवं प्राण के दो-दो हिस्से हैं। एक शुद्ध और दूसरा अशुद्ध। जहाँ तक या जिस किसी शरीर के हिस्से या शरीर के

नाड़ी समूहों पर पूर्वोक्त दोनों तत्त्वों के शुद्ध भाग का अधिकार रहा करता है, वहाँ तक ही उस शरीर के हिस्सों को आरोग्य कहा जाता है। और जिस समय इस शरीर भाग से शुद्ध मन एवं शुद्ध प्राण के स्थान में अशुद्ध मन एवं अशुद्ध प्राण का जमाव हो जाता है, तभी उस शरीर के हिस्से को रोगी कहा जाता है। जिस प्राणा-याम से पूर्वोक्त अशुद्ध भागों के जमाव को हटाकर वहाँ पर शुद्ध भागों का अधिकार कराया जाता है, उसी प्राणायाम का नाम एक-देशी प्राणायाम है। इसकी सिद्धि प्राण और मन के एक तत्त्व में होने से ही हुआ करती है। विधि यह है कि पूरक करते समय आप यह ध्यान किया करें कि जिस स्थान में से आपको रोग हटाना है मानो मैं उस स्थान से अशुद्ध मन प्राण को हटाकर वहाँ पर शुद्ध मन प्राण को भेजकर गन्दे रोगी मन प्राणों को हटा रहा हूँ। जिस दिन आप अपने अशुद्ध मन-प्राण के स्थान पर विशुद्ध मन-प्राण को एक ही प्राणायाम में भेजने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे, उसी दिन अपने और दूसरों के रोग हटाने में सिद्ध-हस्त होंगे।

फिर तो आप में यह अंगरेजी की कहावत सोलह आने चरितार्थ होगी कि—(A sound mind is a sound body.) जैसे आपके मस्तिष्क के विचार होंगे वैसा ही आपका शरीर होगा। जैसा आपका शरीर होगा, वैसे ही आपके मस्तिष्क के विचार होंगे। इसी का नाम कायाकल्प है। चाहे कोई कर देखे।

कुछ ध्यान में रखने की बातें

१—अपनी शक्ति से अधिक वायु पेट में कभी नहीं रोकना चाहिये।

२—रेचक के साथ गुदा कभी मत खोलो।

३—प्राणायामों के बीच में विश्राम अवश्य लेना चाहिये।

४—उदर-संचालन करते समय मूत्र या वीर्य नली में वीर्य को ऊपर खिंचता हुआ अवश्य देखा करे।

५—सदा ब्रह्मचर्य से रहो।

६—कुपथ्य कभी सेवन मत करो। सदा हलका एवं शीघ्र पचनेवाला भोजन किया करें।

७—प्राणायाम सदा शुद्ध सुगन्धित खुले कमरे में ही किया करें।

८—प्राणायाम प्रारम्भ करने के पश्चात् कभी मत छोड़ो।

९—प्राणायाम दो समय प्रातः एवं सायं अवश्य किया करें।

१०—कुटेव एवं कुसंगत से सदा बचना चाहिये।

११—प्रत्येक विधि को बड़ी सावधानी से समझ-विचारकर करना चाहिये; अन्यथा हानि हो सकती है।

सूचना—

ॐ इस पूर्वोक्त यौगिक व्यायाम से अखण्ड ब्रह्मचारियों को ऊर्ध्व रेतत्व प्राप्त होता है; परन्तु इस यौगिक व्यायाम से गृहस्थों को भी अमोघ वीर्य की प्राप्ति होती है। नपुंसक भी पुंसत्व

प्राप्त कर सकते हैं। इस से गृहस्थ पुरुषों को स्तम्भन की गति मन इच्छित हो जाती है। यह योग का ही व्यायाम है जो असाध्य को साध्य, असम्भव को सम्भव, असत्य को सत्य, मृत्यु को अमर बना सकता है। जिन क्रियाओं को आप अपने जीवन भर की कमाई की फ़ीस देने पर भी नहीं पा सकते, ॐ ने आपके सन्मुख उनके गुप्त अमरपन को रख दिया है। काम में लेना आपके अधिकार की बात है।

प्राणायाम बढ़ाने के साधन

१—ॐ प्राणायाम की वृद्धि ओंकार के मानसिक जप से अति शीघ्र हुआ करती है।

२—ॐ एक स्वर में श्वास के टूटने तक मानसिक जप से एक ही ॐ को बोलने से भी प्रणायाम की वृद्धि शीघ्र गति से होती है।

३—ॐ मानसिक भावना से आप एक श्वास टूटने तक कितने ॐ जप सकते हैं, इनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ाकर एक श्वास में एक सहस्र तक बढ़ाने से भी प्राणायाम की तीव्रता से वृद्धि होती है।

४—ॐ श्वास-प्रतिश्वास की गति को ध्यान से देखने से कि एक मिनट में कितनी संख्या में श्वास-प्रतिश्वास होता है। मान लो कि आज आपकी श्वास-गति-संख्या एक मिनट में चौदह-पन्द्रह है, इसे घटाकर एक गति संख्या पर ले आने से भी प्राणायाम बहुत तीव्रता से बढ़ता है।

५—ॐ मन को नेत्रों में स्थापन करके किसी वस्तु पर त्राटक करने से भी प्राणायाम की अच्छी तरक्की होती है। भावार्थ यह है कि मन और नेत्रों को एक भाव में बनाओ।

६—ॐ आप अपने विचारों को मस्तक की तरफ प्रवाहित करें। इससे प्राणायाम स्वतः सिद्ध होने लगता है। इस धारणा से नित्य नई स्मृति एवं स्फूर्ति प्राप्त होने लगती है।

७—ॐ मैं सचमुच बाहर से कुछ भी नहीं हूँ; ऐसी आप धारणा करें। इस धारणा के साथ अपने बाहरपन को छोड़ कर निर्विकल्प होने से प्राणायाम निश्चय अपने आप सिद्ध हो जाता है।

सूचना—

पूर्वोक्त सातों विधियों में केवल मन को मारने के सिवा और कुछ भी कठिन साधन नहीं है। मन को मारने से ही प्राणायाम में सफलता मिला करती है। यही योगशास्त्र का मूल मन्त्र है।

प्राणायाम की सफलता के चिह्न

ॐ प्राणायाम के सफल होने का सबसे प्रथम चिह्न स्वेद (पसीना) आता है। परन्तु इस पसीने को शरीर में मर्दन कर देना चाहिये; अन्यथा शक्ति क्षीण होने की संभावना है। इसके मर्दन से त्वचा में कोमलता आने लगती है। प्राण के संचालन से रोम-कूपों-द्वारा बहिष्कृत मल बत्तियाँ बनकर नीचे पड़ जाता है। जिसके पड़ने से शरीर में चमक एवं कांति का विकास होने लगता है। कुछ दिन में ही प्राणायाम के पश्चात् शरीर में से दिव्य

सुगन्ध आने लग जाती है, जो स्नान करने तक बनी रहती है। दूसरा चिह्न शरीर मात्र की स्नायुओं में आनन्दमय कम्पन होना है। यह योग की महान सिद्धि का सूचक है। यहाँ से ही साधक योग-मार्ग का सच्चा यात्री बनता है; परन्तु इस स्थिति में साधक को बड़ी सावधानी की आवश्यकता है; क्योंकि एक तो साधक की अन्तर शक्ति का जागरण साधक को अन्तरानन्द की ओर खींचा करता है और दूसरे साधक की वृत्ति कुछ उद्विग्न-सी हो जाने से नाना ओर से खींचा करती है। ॐ के अनुभव में साधक की यह स्थिति तेजयुक्त विक्षिप्त-सी हुआ करती है। इस कंपन का कारण प्राणायाम की ऊष्णता है। ॐ कहता आ रहा है कि इस शरीर का जीवन-मरण कुण्डलनी-शक्ति की मुक्तता और बद्धता पर ही है। इसका कुण्डलाकार सोना ही मृत्यु और बद्धता है; और इसका जागृत होकर समसूत्र से मस्तक में प्रवेश ही जीवन और मुक्तता है। बस इसके जागृत होने के कारण ही साधक का स्नायु-समूह कम्पायमान हुआ करता है। इस कंपन को ॐ उद्विग्नता, क्षोभ और आनन्द दोनों ही नाम दिया करता है। उदविग्नता तो इसलिए देता है कि उस समय कुण्डलिनी-शक्ति से अमृत छिना जा रहा है, इसलिये वह क्षोभित क्रोधित-सी होकर साधक को ताड़ना-सी दिया करती है। यही कारण साधक के उच्चाटित होने का होता है और आनन्द नाम इसलिए देता है कि इस समय शरीर के स्नायु समूहों को अमृत का भोजन

मिलने वाला है, इसी खुशी से आनन्दित होकर वह उछल-कूद मचाया करती है। इस समय स्नायु समूह को ऐसा आनन्द है, जैसे कई दिनों के भूखे ब्राह्मण को स्नान कराकर चतुर्विद भोजन, यानी चातक को स्वाती बूँद का, गाय को नवतृण पानी का होता है। पसीने का चिह्न स्नान का चिह्न है। कम्पन का चिह्न थाली परोसने का चिह्न कहा जा सकता है। ॐ तीसरा चिह्न शरीर में आनन्द के रोमाञ्च होते हुए प्राण का मेरुदण्ड सुष्मणारन्ध्र की ग्रंथी भेदन करते हुए प्राण का मस्तक में कुल-कुलाना है। अर्थात् स्पर्श है। सारांश यह है कि कुण्डलनो के जागृत होने पर प्रथम शरीर में मधुरानन्द का रोमाञ्च होने लगता है। दूसरे प्राण का मेरुदण्ड में प्रवेश होकर सुष्मणा की ग्रंथियों का भेदन होता है। इस समय साधक को प्राण का स्पर्श मेरुदण्ड के अन्तर ग्रन्थियों में ऐसे मालूम हुआ करता है, जैसे कोई चींटियों का समूह उसमें चल रहा हो। यह समूह क्रम से एक ग्रन्थि से दूसरी में, दूसरी से तीसरी में, तीसरी से चौथी आदि सब ग्रंथियों का भेदन करके मस्तक में शिखा के अगले भाग में जो रन्ध्र-कूप है, उसमें स्पर्श किया करता है। यही प्राणायाम-सिद्धि का सर्वोत्तम चिह्न है। इसके आगे साधक का अपने आप ही प्रत्याहार होने लगता है, जिसका उल्लेख 'समाधिनामक' पुस्तक में करेंगे।

रोग-निवारक प्राणायामों की सफलता के चिह्न

ॐ वीर्य आकर्ष संशोधक प्राणायाम की सफलता का

चिह्न यह है कि जिस समय आपके गुदालिंग नाभि तक के मध्य भाग के आकर्षण का झटका मस्तक के मध्य भाग में लगने लगे तभी आपको उर्द्ध रेतस सिद्धि होने में सफलता समझनी चाहिये।

ॐ जिस समय आपके प्राण का स्पर्श मात्र फेफड़ों के मज्जा-तंतुओं में होता हुआ आपको दीखने लगे, उसी दिन आप चय से मुक्त हुए समझें।

रक्त-शुद्धि—ॐ यदि आपके नखों में लाली होने लगे तो आप अपने को भयानक-से-भयानक रक्त-विकार से मुक्त समझिये।

अपस्मार (मृगी)—ॐ मस्तक में दो तरह के भयङ्कर रोग के चिह्न होते हैं—एक तो मस्तक का असह्य हलकापन जिस हलकेपन में मस्तक वाले को घृणा-सी रहा करती है। यह मस्तक का असह्य बोझिलापन है, जो मस्तक वाले को पत्थर-सा मालूम होता है। ये ही दो चिह्न मस्तक रोगों के मूल कारण हैं। जिस मस्तक में मस्तक वाले को सुगन्धित पुष्प का-सा सुगन्धानन्द आया करता है; जिसमें हास्य-रस के फव्वारे से बहते ही रहते हैं, वही मस्तक पूर्ण आरोग्य होता है। यदि आपके मस्तक से पूर्वोक्त दोनों भाव हट कर आपको अपने मस्तक में कुछ भी प्रेम आने लगे तो आप अपने मस्तक को रोग से मुक्त हुआ समझिये। चाहे मृगी का रोग ही क्यों न हो।

योग की सफलता के मुख्य साधनः—(१) ब्रह्मचर्य (२)

लघु एवं सतोगुनी आहार (३) नियम बद्धता (४) श्रद्धा (५) आसन की दृढ़ता (६) प्राणायाम जो पूर्वोक्त ५ साधनों को न निभा सके, वह (६) छठे साधन प्राणायाम में कभी हाथ न डाले।

अपानायाम

ॐ यह बात विश्व के विद्वानों का सिद्धान्त हो चुकी है कि सर्व रोग-व्याधियों का केन्द्र उदर (पेट) ही है। अर्थात् सब रोग पेट से ही उत्पन्न होते हैं। सबसे प्रथम पेट में रोग उत्पन्न होने का कारण अपान की अशुद्धि—भ्रष्टता ही है। अपान के भ्रष्ट या अशुद्ध होते ही पेट का भार असह्य हो जाता है। जो पेट मनुष्य के जीवन का मुख्य केन्द्र है, वही अपान के बिगड़ने पर मृत्यु का दूत बन जाता है। जो पेट अपान-शुद्धि के समय एक पुष्प से भी हलका मालूम होता था, वही एक महान शिला का भार हो जाता है। अपान के भ्रष्ट होने पर पेट में वायु के गोले बनकर गुड़कने लगते हैं। कभी-कभी बिलकुल वायु गुम हो जाता है। इस अवस्था में एक बार वायु का बाहर आना मानो परमानन्द की ही प्राप्ति होने-सा प्रतीत होता है। अपान के अशुद्ध होने पर मनुष्य को शौच का साफ़-खुलकर आना तो मानो एक स्वप्न-सा ही हो जाता है। शौच की तो कौन कहे ? अपान भ्रष्ट पुरुषों को एक 'पाद' का खुलकर आना ही जीवन का आनन्द प्राप्त होना है। जो मल अपान के शुद्ध रहने पर मनुष्य को अपने त्याग के लिए अपने आप ही कान पकड़ कर सूचित करता

था कि चलो मेरा त्याग करो; क्योंकि मल कभी स्वच्छता में नहीं रह सकता। उसी मल त्याग के लिए हमें घण्टों टट्टी, अस्वच्छालय जैसे मलीन स्थान में बैठकर मल की उपासना करनी पड़ती है। जिसके लिए कुछ भी बल की आवश्यकता नहीं थी उस पर हमको अपना पूरा बल लगाना पड़ता है; फिर भी सफलता हमसे दूर भागती जाती है! मल हमसे और भी कुपित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि मल की विजय और हमारी पराजय होती है। मल अपने स्थान पर दृढ़ रहता है और हम लोटा उलट कर मोरचा छोड़कर भागते हैं और दिन भर अपनी हार के रोने रोया करते हैं—'अजी आज तो टट्टी नहीं आई, क्या करें कब्ज ने मार डाला।' कहिये ॐ क्या यह जीवन है? यदि हमारा अपान शुद्ध होता तो हमें यह मल एक मिनट में ही त्याग कर सर्पाकृति से पृथ्वी पर जा विराजता; परन्तु यह तो तभी हो सकता है जब हम टट्टी की उपासना के समय को अपान शुद्धि में लगा देवें। इसी अपान अशुद्धि की अवस्था विशेष का नाम कोष्ठबद्धता है। इसकी एक अवस्था का दिग्दर्शन ऊपर हो चुका है और दूसरी अवस्था यह होती है कि अभी मल त्याग कर आये कि एक-दो घण्टे के पश्चात् फिर जाना पड़ा। ऐसे दिन भर में पाँच-सात वार जाने पर भी मल की सफाई नहीं होती है। इन दोनों अवस्थाओं में कभी मल पैसे-दो-पैसे भर पतला-सा आया करता है। कभी दो-चार मिनगियों-सी ही आकर रह जाती हैं।

परिणाम यह होता है कि उस मल में सड़ान होने लगती है और इस सड़ान की भाप, धूँआ, गेस बनकर सब शरीर में अपना अधिकार जमा लेती है। इसी अधिकार का नाम रोग—व्याधि है। रोग मात्र इसी गेस, धूँए से बनते हैं। सर्व प्रथम यह धुँआ वीर्य में दोष उत्पन्न करता है। कमर में दर्द, आँखों में खुजली, चकाचौंध आदि सर्व रोग, कर्ण-पीड़ा, दाँतों की पीड़ा, शिर-शूल, आदि सर्व रोगों का मल अपान अशुद्धि ही है। इसी अपान शुद्धि के निवारणार्थ यहाँ कुछ प्रयोग ॐ स्वरूप पाठकों को बताये जाते हैं। ॐ को विश्वास है कि पाठक इससे अमर-जीवन और आरोग्यता प्राप्त करेंगे।

प्रथम प्रयोग

ॐ आप इस प्रयोग के लिए प्रथम कुछ पग चौड़े करके उत्कट आसन से बैठकर गुदा से अश्वी-मुद्रा किया करें। अश्वी-मुद्रा उसको कहते हैं जो मुद्रा लीद करने के पश्चात् घोड़ा अपनी गुदा से किया करता है अर्थात् जैसे घोड़ा लीद करने के पश्चात् अपनी गुदा का संकोच-विकास, अकुञ्चन-प्रतिकुञ्चन किया करता है, वैसे आप भी अपनी गुदा से करने का अभ्यास करें। यही अश्वी मुद्रा है। इसका अभ्यास ठीक होने पर आप इसे जी चाहे जहाँ और जिस किसी आसन से कर सकते हैं। चाहे आप किसी सभा सोसायटी में ही क्यों न बैठे हों।

फल—इसका फल अपान की शुद्धि, वीर्य की पवित्रता,

उसका ऊर्ध्व आकर्षन, गुदा द्वार की स्वच्छता, गुदा के चक्रों का नरमपन एवं वस्ति-कर्म में सफलता होना है। तीनों प्रकार के ववासीरों का नाश, वीर्य-वाही स्नायुओं की वल-वृद्धि एवं आकर्षण-शक्ति का विकास होना है। कुण्डली शक्ति का जागृत होना, आधार चक्र का विकास, गणेश एवं यम भगवान् की प्रसन्नता होती है। जो साधक इनके स्थान मूलाधार को स्वच्छ एवं पवित्र रखा करते हैं, उन्हीं पर गणेश एवं यमराज वड़े ही संतुष्ट रहा करते हैं। वस, जिस साधक पर यह दोनों देवता प्रसन्न हों उसको फिर डर ही किसका है? और जिन पर इनकी क्रूरदृष्टि होती है उसको वचाने की शक्ति फिर किसमें है? यदि इसके साथ गणेश क्रिया करे तो अति उत्तम है। वीर्य-दोष के लिए तो यह साधन शुक्राचार्य की संजीवनी-विद्या ही है। चाहे कोई कर देखे। इससे मृतक वीर्य भी जीवन प्राप्त करता है। प्रयोग अनुभूत है।

दूसरा प्रयोग

ॐ अव आप सीधी समसूत्र पृथ्वी पर कोई कपड़ा विछा कर सीधे समसूत्र में लेट कर ४० वार उदर और ४० वार हृदय को अति जोर से फुलावें और छोड़ें। यदि आप दो मिनट का कुम्भक करके एक कुम्भक में ४ वार हृदय को ४ वार पेट को फुलाकर ऐसे दस कुम्भक कर सकें तो अति उत्तम है। इसका फल दिव्य जीवन होता है।

फल—ॐ इस क्रिया से सूर्य-चक्र (सोलर प्रोक्सस) की

जागृति, कुण्डलनी-शक्ति का उद्धारन, हृदय का विकास, फेफड़े एवं उदर तथा वीर्य की अपान वायु की शुद्धि, मंदाग्नि का नाश क्षुधा की वृद्धि, पाचन क्रिया में तीव्रता आकर दिन-प्रतिदिन नया जीवन प्राप्त होने लगता है। कुछ ही दिनों में आपके मुखारविन्द पर कान्ति एवं सौन्दर्य छिटकने लगेगा।

तीसरा प्रयोग

ॐ अब आप समसूत्र में खड़े होकर सामने की ओर इतने झुकें जिससे आपका मस्तक घुटनों के सामने तक आजावे। इसके पश्चात् आप अपने दोनों हाथों की हथेलियाँ घुटनों पर जमा कर अपने पेट को दोनों ओर बाँये-दाँये गोलाकार घुमाने की चेष्टा करें। इस अभ्यास के कुछ ही दिन करने से आपका उदर गोलाकार घूमने लगेगा। दोनों नलों के गोले गुलक गुलक बोल कर चक्कर काटेंगे। इसको योग-शास्त्र में नौली-क्रिया कहते हैं।

फल—ॐ इस नौली-क्रिया के पूर्वोक्त सर्व फल होते हुए भी इससे वातज सर्व रोगों का नाश, क्षुधा की वृद्धि, पाचन-शक्ति की तीव्रता, उदर की कोमलता, यकृत, प्लीहा की शुद्धि आदि अनेक फल साधक को मिलते हैं। योग-शास्त्र में नौली-क्रिया को सर्व क्रियाओं की मुकुट-मणि कहा है।

चौथा प्रयोग

ॐ पूर्वोक्त नौली करके आप समसूत्र में खड़े होकर शरीर एवं उदर को ढीला-सा करके अपने दाँये हाथ से दाँयी कुक्षि

को बलपूर्वक दबाकर बाँयी कुक्षि को कम से कम १०-१२ बार फुलावें और समेटा करें।

फल—ॐ इससे प्लीहा में कोमलता आकर वह घटने लगती है। कुछ एक दिनों में मनुष्य को मार डालनेवाली प्लीहा जीवन देने वाली हो जाती है। इससे दाँयी कुक्षि बिलकुल निर्विकार होकर क्षुधा की वृद्धि होने लगती है। साधक में अनेक गुण अन्य भी प्रकट होते हैं; जो करने से ही मालूम होंगे।

पाँचवाँ प्रयोग

ॐ पूर्वोक्त रीत्यनुसार ही बाँये हाथ से बाँयी कुक्षि को दबाकर दाँयी कुक्षि को फुलावें और समेटें।

फल—ॐ इससे यकृत निर्दोष होकर साधक की पाचन-शक्ति तीव्र होती है। यकृत (लीवर) का बढ़ना मनुष्य की आयु का नाश होना है। यकृत के रोगियों को यह क्रिया अवश्य करनी चाहिये।

छठाँ प्रयोग

ॐ अब आप उपस्थ कंद के समीप के भाग को दोनों हाथों से बलपूर्वक दबाकर उदर के ऊपर तक हृदय की पसलियों की तरफ के भाग को बलपूर्वक फुलावें और समेटें।

फल—ॐ इससे सूर्य-चक्र के ज्ञान-तन्तुओं में प्रगति होती है। हृदय के सर्व रोगों का नाश होकर हृदय और उदर के ऊपर का भाग शक्तिशाली होता है। इसको हृदय के कमजोर पुरुष

शनैः-शनैः अभ्यास करके बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। इससे यकृत बिलकुल निर्दोष होकर अपने असली रूप में आ जाता है।

सातवाँ प्रयोग

ॐ अब आप उदर के ऊपरी भाग को दोनों हाथों से बल-पूर्वक दबाकर पेट के नीचे के भाग को बलपूर्वक फुलावें और समेटें।

फल—ॐ इससे भी सूर्य-चक्र के ज्ञान-तन्तुओं में प्रगति उत्पन्न होती है। कंद स्थान और वीर्यवाही स्नायु शुद्ध होकर शक्ति-शाली होते हैं। वीर्य का ऊर्ध्व आकर्षण होने लगता है। कटि-प्रदेश के रोगों का नाश होने लगता है। पेट में गया हुआ आँव भी बाहर निकलने लगता है। पेचिस की बीमारी वालों के लिए यह क्रिया बड़ी उपयोगी है। अतः इससे लाभ उठावें।

आठवाँ प्रयोग

ॐ अब आप थोड़े से आगे को झुक कर हृदय की दोनों पसलियों को दोनों हाथों की अँगुलियों से पकड़कर अपने उदर को बलपूर्वक फुलावें और समेटें। यदि बाँयें-दाँयें घुमा सकें तो अति उत्तम है।

फल—ॐ इस क्रिया का पूर्वोक्त सम फल होते हुए भी हृदय की पसलियाँ बिलकुल निर्दोष हो जाती हैं; परन्तु हाथों की अँगु-लियाँ पसलियों के नीचे अवश्य जानी चाहिये। इससे फल अति-शीघ्र होता है।

नवाँ प्रयोग

ॐ अब आप अपने दोनों हाथों से अपनी कुक्षियों को बलपूर्वक दबाकर पेट के मध्य भाग, नाभि स्तम्भ को बलपूर्वक समेटें और फुलावें। साथ ही बाहर की ओर खड़ा करने की भी कोशिश करे। अन्दर मेरूदण्ड की तरफ़ भी खींचे।

फल—ॐ यह क्रिया कुछ कठिन अवश्य है; परन्तु इसके पूर्णतया सिद्ध होने पर जो अपूर्व फल मिलता है, उसका कहना अकथनीय है। क्योंकि इससे सूर्य-चक्र प्रोक्शन सोलर इतना जागृत होता है, जितना कि अन्य किसी भी साधन से होना असम्भव है। सूर्य-चक्र के जागृत होने से मनुष्य में ब्राह्मी-वृत्ति का पूर्णतया विकास हो जाता है। उसके जागृत होते ही अमेरिकन 'बीबी ऐलीबेथ' के मुँह से अचानक निकल पड़ा था कि मैं सूर्य हूँ, मैं विश्वात्मा हूँ। क्या उसकी यह भाषा काल्पनिक थोड़े ही थी। नहीं; यह वैदिक ऋषि-प्रणीत ईश्वरीय सिद्ध भाषा थी। सोहमस्मि।

दसवाँ प्रयोग

ॐ अब आप अपने उदर की मध्य सीमा को दोनों हाथों से बलपूर्वक दबाकर दोनों कुक्षियों को बलपूर्वक फुलावें और समेटें। इसका फल कुक्षियों का संशोधन और सूर्य-चक्र का भेदन ही है। यदि बायें-दायें बारी-बारी से फुलावें तो फल अधिक आश्चर्यजनक होगा।

ग्यारहवाँ प्रयोग

ॐ अब आप सर्वाङ्ग आसन करके दोनों पगों को ठीक सीधे आकाश की ओर कर शरीर एवं टाँगों को कुछ ढीली-सी करके पेट को बारबार फुलावें और समेटें। ऐसे बाँये-दाँये करें।

बारहवाँ प्रयोग

ॐ सर्वाङ्ग आसन करके दोनों घुटनों को कानों से लगाकर शरीर एवं उदर को बिलकुल ढीला करके पेट को पूर्वोक्त रीति से ही चलावें। इससे अपान वायु बहुत आवेगा; जो अपान शुद्धि का प्रथम लक्षण है। इसको कर्ण-पीड़ा आसन कहते हैं।

तेरहवाँ प्रयोग

ॐ अब आप शीर्षासन करके अपने टाँगों को बलपूर्वक तनतना कर उदर को अन्दर-बाहर फुलावें। हो सके तो बायें-दाँये भी घुमाने की चेष्टा करें। इस क्रिया के पश्चात् आप अपनी टाँगों सहित सब अङ्ग को ढीला-सा करके एकाग्र से हो जावें। देखना फिर आपका अपान वायु किस भाँति से बाहर जा कर शुद्ध अपान पेट में संचित होने लगता है। जब पूर्वोक्त साधनों से आपका अपान बिलकुल शुद्ध हो जायगा, तभी आपका अपानायाम सिद्ध होगा। अपानायाम के सिद्ध होने पर आपका शरीर अपान वायु न आने पर भी पुष्प की सदृश हलका और प्रफुल्लित रहा करेगा। फिर आपके पेट में कभी वायु गुड़गुड़ाहट नहीं करेगा। आपको समय पर बिलकुल ही बिना परिश्रम किये बँधा

हुआ मल आया करेगा। फिर तो आप २४ चौबीसों घण्टे कहीं आनन्द की वंशी बजाया करेंगे। यही जीवन का आनंद है।

उपसंहार

ॐ उपसंहार में यही बताना चाहता है कि जितनी विश्व में विद्या-उपविद्या हैं; वे सभी मनुष्यों को ईश्वर-दर्शन, ईश्वर-प्राप्ति, अमरत्व आदि का दिलाना सिद्ध करती हैं। इसी लालच के साथ सब मनुष्य दौड़ते हैं। एक धर्म से दूसरे धर्म में जाया-आया करते हैं। परन्तु यह सभी धर्म पूर्वोक्त अमरत्व आदि मरने के पश्चात् देने की शर्त करते हैं। जैसे करमठ कहते हैं कि तुम्हें मरने के पश्चात् ही स्वर्ग मिलेगा। जिसमें उर्वसी, मैनका, रम्भा, घृताचि आदि सब अप्सराओं के साथ अमृतपान आदि भी प्राप्त होंगे। ऐसे ही भक्त भी भगवत् की प्राप्ति मरने के पीछे ही कहते हैं। आजकल के भक्तों ने तो भक्ति की और भी छीछा-लीदी करदी है। वे कहते हैं कि हे प्रभो! मुझे और कुछ नहीं चाहिये। मुझे तो वृन्दावन का सियार ही बना देना। ऐसे भक्तों से ॐ कहा करता है कि भाई साहब आप जमुनाजी का जल क्यों न बन जावें; जिसे गाय, भैंस, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जीव पीकर शान्ति पा सकें। सियार तो सब को ही दुःखप्रद होता है। इससे आपको इतना अधिक प्रेम क्यों है? इसी भाँति से

वेदान्तरूप केशरी भी शरीर का शिकार ही करता है। वह कहता है कि शरीर तो नाशवान् ही है। नाशवान् वस्तु का रक्षण करना वृथा प्रयास करना है। आत्मा अविनाशी है। उसको कोई किसी तरह से नाश नहीं कर सकता है (उसको तो तुम इस नाशवान् शरीर को त्याग कर ही पा सकोगे)। ऐसे ही ईसाइयों का 'हेवन' मुसलमानों का 'वहिस्त' जैनों की 'मुक्तसिला' बौद्धों का 'बौद्ध वृक्ष' एवं अन्य धर्मों के सुख भी काल्पनिक अदृश्य आनन्दों की प्राप्ति मरने पर ही बताई जाती है। जिनका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल सकता। प्रत्यक्ष फलदाता विद्या तो केवल एक योग-विद्या ही है; जिससे मनुष्य नित्य नया जीवन, नित्य नया यौवन, नित्य नया भगवत्-दर्शन किया करता है। योग-विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिससे मनुष्य शरीर सहित ही मृत्यु पर विजय प्राप्त किया करता है। योग-विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिससे मनुष्य नित्य प्रति ईश्वर की ज्योतिर्मयी किरणों में स्नान किया करता है। योग-विद्या ही ऐसी विद्या है जिससे रोगी आरोग्य, मृत्यु, अमर-पन, वृद्ध, युवापन एवं प्राप्त किया करता है। योग-विद्या में ही भगवान् के कानून एवं नियम को तोड़ने की शक्ति होती है। योग-विद्या से ही मनुष्य भगवान के मृत्यु रूप कानून को तोड़ उसके अमर सिंहासन पर जा बैठता है। यदि आपको इसका प्रत्यक्ष फल देखना है तो ॐ के लिखे तीन पुष्प* रूप ग्रन्थों की सुगन्धि

---

* १ पुष्प—'प्राणायाम तत्त्व' यही पुस्तक जो आपके करकमलों में है।

अपनी भावना की प्राण से लेते हुए १२ मास पर्यन्त एक-एक पुष्प को प्रयोग में लावें। इससे आप देखेंगे कि आपसे मृत्यु, रोग वृद्धापन एवं अनिश्वर भावना कितनी दूर चली जाती है और आपके कितने समीप में अमरत्व आ जाता है। ॐ को विश्वास है कि आप फिर इन प्रयोगों को कभी न छोड़ेंगे; क्योंकि इन्हीं से आपको चार तत्त्व एक साथ ही प्राप्त होंगे और ईश्वर-दर्शन, अमरत्व, आरोग्यता का प्रकाश, युवावस्था या स्थिर यौवन एवं सौन्दर्य आदि से कभी वियोग नहीं होगा।

॥ आनन्दम् ॥

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

---

२ पुष्प—'आसनों के व्यायाम'।

३ पुष्प—'षटकर्म मुद्रा प्रयोग'।